आठवां दशक सृजन के संदर्भ

सम्पादक

रमेश मेहता

जम्मू कश्मीर के अहिन्दी भाषी हिन्दी लेखकों ने आर्थिक रूप से पिछड़े हुए इस क्षेत्र के जन-जीवन को अपनी रचनाओं में मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। किसी वाद या गुट विशेष की घेरेबन्दी से बाहर रहकर रचनारत इन लेखकों ने क्षेत्रीय भाषाओं से मिलने वाले लाभ की उपेक्षा करते हुए अपने को एक ऐसी भाषा के प्रति समर्पित किया है जहां स्थापित होने के लिए ही नहीं, मामूली पहचान के लिए भी लेखकों को अनवरत संघर्ष करना पड़ता है। प्रसन्नता की बात है कि सकलन के लगभग सभी रचनाकार हिन्दी जगत में अपनी पहचान बनाने में सफल रहे हैं।

इस संकलन में प्रकाशित रंग-नाटक, कहानियां और कविताएं हमें इस बात की आश्वस्ति देती हैं कि अभी भी गंभीर लेखन के लिए लोगों के मन में उत्साह है और वे इसका स्वागत करते हैं। मानवीय सम्बन्धों पर बढ़ते हुए आर्थिक दबावों एवं राजनैतिक हस्तक्षेप से होने वाले प्रभावों को विश्लेषित करने की इन रचनाओं में हुई सफल कोशिश को सहज ही लक्षित किया जा सकता है।

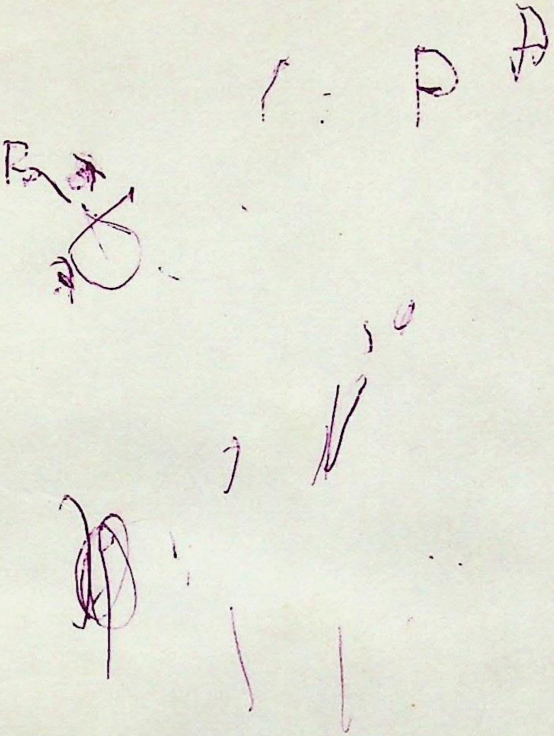

आठवां दशक : सृजन के सन्दर्भ

आठवां दशक : सृजन के सन्दर्भ

[जम्मू-कश्मीर के अहिन्दी भाषी हिन्दी
लेखकों की प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन]

K. P. SABHA AMBPHALLA
LIBRARY
No 2.06
Date 21/7/05
JAMMU

सम्पादक
रमेश मेहता

जे० एण्ड के० अकादमी आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़

जे० एण्ड के० अकादमी ऑफ आर्ट,
कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, नहर मार्ग, जम्मू
द्वारा प्रकाशित

मूल्य : रु० २४.००

प्रथम संस्करण : १९८६

आवरण : हरिप्रकाश त्यागी

रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-३२
द्वारा मुद्रित

ATHWAN DASHAK : SRIJAN KE SANDARBH
Edited by Ramesh Mehta

अपनी बात

जम्मू कश्मीर में हिन्दी-साहित्य-रचना की परम्परा बड़ी पुरानी है। १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भड्डू ग्राम के कवि देवदत्त ने हिन्दी भाषा की जो सेवा की है वह अविस्मरणीय है। उनके बाद कश्मीर में लक्ष्मण जू तथा परमानन्द जैसे कवियों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में नीलकण्ठ ने तथा बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्री एवं पं० हरदत्त प्रभृति कवियों ने इस अमरबेल को सींचने का महत्वपूर्ण काम किया।

बीसवीं शताब्दी में जम्मू तथा कश्मीर में हिन्दी प्रेमियों ने पत्रिकाओं एवं पुस्तकों के प्रकाशन के माध्यम से अपने को हिन्दी की मुख्य धारा से जोड़ने के अथक प्रयास किए हैं। पांचवें दशक तक हिन्दी के प्रचार-प्रसार का ज्वार अपने यौवन पर दिखाई देता है। इसके बाद इस दिशा में ठहराव को सहज ही लक्षित किया जा सकता है। सन् १९६५ में हमारी अकादमी ने पत्रिका (शीराज़ा) तथा वार्षिकी (हमारा साहित्य) के माध्यम से जम्मू-कश्मीर में हिन्दी साहित्य की रचना को गति एवं बल प्रदान करने का सार्थक प्रयास आरम्भ किया। हमें इस बात का गर्व है कि 'शीराज़ा' एवं 'हमारा साहित्य' ने अपनी भूमिका को भली-भांति समझा और निभाया है। इससे इतर अकादमी ने स्थानीय रचनाकारों की पांडुलिपियों के प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता प्रदान कर अनेक महत्वपूर्ण कृतियों के प्रकाशन को सम्भव बनाया है और इन्हें श्रेष्ठता के आधार पर पुरस्कारों से सम्मानित कर स्तर को बनाए रखने की प्रेरणा भी दी है।

जहां अकादमी ने अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किए हैं वहीं समय-समय पर हिन्दी रचनाकारों के श्रेष्ठ कृतित्व को प्रकाश में लाने के लिए संकलनों का प्रकाशन भी किया है। **गद्यांजलि** तथा **पद्यांजलि** में जहां चौथे, पांचवें और छठे दशक के रचनाकारों को प्रतिनिधित्व मिला था वहीं सन् १९७८ में प्रकाशित **'चीड़ों में ठहरी बयार'** में सन् १९६० से १९७५ तक के रचनात्मक संदर्भों को लिया गया था। इस पुस्तक का हिन्दी में जैसा स्वागत हुआ उससे प्रेरणा लेकर हमें लगा कि अब दशकों के आधार पर इस

लेखन को परिचित करवाना लाभकारी रहेगा। होता कुछ यूं है कि प्रकाशन तंत्र की कतिपय खूबियों के कारण अनेक रचनाएं या तो प्रकाश में आने से वंचित हो जाती हैं और या फिर छपने के बाद उनका कहीं कोई नोटिस नहीं लिया जाता है। अभी पिछले दिनों दिल्ली में आयोजित एक गोष्ठी में इस मुद्दे पर बातचीत हुई थी कि इस अंचल के अनेक सम्भावनाशील कवियों की अनदेखी की गई है। इसके कारणों की पड़ताल करने का यह समय नहीं है। तो भी यह सच है कि इस अंचल के अधिकांश रचनाकारों को अपनी पहचान बनाने की दिशा में जैसी सफलता आठवें दशक में मिली है, उससे पहले नहीं मिली थी। जम्मू-कश्मीर के हिन्दी साहित्य के इतिहास में आठवां दशक इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि इसी दशक में सर्वाधिक नई प्रतिभाओं ने अपने पंख खोले हैं और सुदूर क्षितिजों तक उड़ान भरने में सफलता पाई है।

किसी भी सृजनशील रचनाकार की सफलता की पहचान उसके कृतित्व के आधार पर ही हो सकती है। इसीलिए प्रस्तुत संकलन के लिए सहयोगी रचनाकारों की रचनाओं का चयन करते समय इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि इन कविताओं या कहानियों में उनके सोच और साहित्य के मूलभूत मुद्दों को रेखांकित किया जा सके। जहां हमारे सहयोगी बहुत से रचनाकार ऐसे हैं जिनकी रचनाओं का न सिर्फ राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में प्रकाशन हुआ है बल्कि उनकी पुस्तकों पर अपेक्षित चर्चा भी हुई है, वहीं ऐसे भी कवि-कथाकार हैं जिन्होंने इस दशक के अन्तिम चरण में लिखना शुरू किया था और वे अपनी प्रारम्भिक रचनाओं से ही अपनी पहचान बनाने में सफल रहे थे। इसे आकस्मिक नहीं माना जा सकता। वास्तव में इन नवोदित रचनाकारों को विरासत में जम्मू-कश्मीर ही नहीं, सारे भारत के हिन्दी लेखकों की रचनाधर्मिता मिली है। कहने को यह लोग अहिन्दी भाषी हिन्दी लेखक हैं किन्तु इनकी रचनाओं से कहीं भी ऐसा आभास नहीं मिलता कि उन्हें अपने को एक अर्जित भाषा में अभिव्यक्त करते समय किसी कठिनाई से दो-चार होना पड़ता होगा। अपने को एक विशाल परिवार का सदस्य मानने का गर्व और गौरव ही उनकी शक्ति है। मैं यह मानकर चल रहा हूं कि यद्यपि इन रचनाकारों ने बिना फल की चिन्ता किए कर्म किया है तथापि इनका प्राप्य, आज नहीं तो कल, इन्हें मिलकर रहेगा। इन्हें साथ लिए बिना हिन्दी साहित्य का इतिहास अधूरा रहेगा क्योंकि बूंद-बूंद से सागर बनता है और सागर के बाहर बूंद का चाहे कोई महत्व न हो लेकिन सागर के भीतर रहते प्रत्येक बूंद सागर होती है, और अपने को दे देने की यही उसकी उपलब्धि है।

—रमेश मेहता

K. P. SABHA
LIBRARY
No.........
Date.........
JAMMU

अनुक्रम

कहानी

टोकरी भर धूप	हरिकृष्ण कौल	९
गुमशुदा	वेद राही	१७
कर्फ्यू	रतन लाल शांत	२५
दर्द की मछली	ओम गोस्वामी	३७
कालक्षयी	छत्रपाल	४६
खत	महाराज कृष्ण शाह	५५
चेहरे	डॉ० उषा व्यास	६१
कहीं बहुत दूर	अलंकार	७१
माँ	क्षेमलता वखलू	७८

कविता

दण्ड/आंधी	मोहन निराश	८३
प्रश्नों के प्रश्न/आदि पुरुष का दोष एक ध्वस्त होते हुए नगर की चीख	सुभाष भारद्वाज	८५
अपने से दूर	शशिशेखर तोषखानी	९०
अनुभूति छंब के एक शरणार्थी की नन्हीं सी लाल हथेली	डॉ० ओम प्रकाश गुप्त	९४
फर्क/सुर्ख होने की इंतजारी में	रमेश मेहता	९८
गीत/समय शिला पर	निर्मल विनोद	१०१
एक झोंका हवा के लिए/एक ज्वलंत प्रश्न	पृथ्वीनाथ मधुप	१०४
अल्बम के चार पृष्ठ/बदलाव	ज्योतीश्वर 'पथिक'	१०७
नपुंसक इतिहास और मां/अंधे बहरे	अग्निशेखर	१११
स्वावलम्बन/जवाबों की तलाश	डॉ० आदर्श	११४

एक अनाम यात्रा/मेरा दर्द	अशोक जेरथ	११८
फैलने की हद तक/बंद मुट्ठियों की तहरीर	उपेन्द्र रैणा	१२१
इस बार शायद/तलाश अभी जारी है	महाराज कृष्ण संतोषी	१२४
लौट चलें जंगल की ओर/इस बार सर्दियों में	बलनील देवम्	१२७
खोखले एहसास के कंधों पर टिकी शाम		
कान में फूंके हुए मंत्र	अशोक कुमार	१३०
तथाकथित ईश्वर	क्षमा कौल	१३२
नए सूर्यपुत्र की प्रतीक्षा	सुशांत चौधरी	१३४

रंग नाटक

सांझे मंच पर	सुतीक्ष्ण कुमार 'आनन्दम'	१३६

टोकरी भर धूप

□ हरि कृष्ण कौल

पोझकुज दिल्ली पहुंची तो उसने अपने को एक नई ही दुनिया में पाया। उसे पहली बार एक अजीब-सी निश्चिन्तता का अनुभव हुआ। सबसे बड़ी बात यह थी कि कहीं भी कोई मुसलमान नज़र नहीं आता था। चारों ओर अपने हिन्दू भाई थे। दूध वाला भी हिन्दू, सब्जी वाला भी हिन्दू, नाई भी हिन्दू, नानवाई भी हिन्दू और फिर भगवान ने उसे उस चुड़ैल के चंगुल से आज़ाद किया था। यह बात भी पोझकुज के लिए कम सुखदायक नहीं थी। वह चुड़ैल अर्थात अपनी बड़ी बहू याद आते ही पोझकुज कांप उठी। बात-बात पर लड़ने वाली झगड़ालू औरत। मोहल्ले में कोई पोझकुज का नाम तक नहीं जानता था मगर उसने उसे घर-घर बदनाम किया। भगवान अन्धा नहीं? उसका मुंह देखकर ही उसने उसे दाने-दाने के लिए मोहताज बनाया है। और नहीं तो क्या? आखिर साबा और गाशा एक ही मां के जाये हैं। देखो तो सही यह यहां किस ठाठ से रहता है और वह वहां कैसी मुसीबत की ज़िन्दगी ढो रहा है। उसी खोटे भाग वाली चुड़ैल के कारण!—पोझकुज ने मन में फैसला किया था कि वह गर्मियों में भी कश्मीर वापस नहीं जाएगी।

समय दस के आस-पास रहा होगा, पोझकुज धूप में बैठने के लिए बाहर आंगन में आई। आंगन के मध्य टायलें बिछी थीं और टायलों के दोनों ओर फूलों की क्यारियां और दूब थी। टायलों वाले भाग के किनारों पर भी गमलों में फूलों के पौधे थे। साबा अर्थात पोझकुज के छोटे बेटे सुरेन्द्रनाथ को सरोजनी नगर में एक अच्छा टाइप सरकारी क्वार्टर मिला था। पहले तल्ले में ड्राइंगरूम, स्टोर रूम, किचन और किचन के आगे खुली जगह जहां मेज़-कुर्सियां लगाकर उन्होंने डाइनिंग रूम बनाया था। दूसरे तल्ले में लैटरीन, बाथरूम और दो बेड-रूम। एक में वे पति-पत्नी सोते और दूसरे में उन्होंने पोझकुज के लिए खाट लगाई थी। ऊपर छत और बालकनी थी। सुरेन्द्रनाथ को इंग्लैण्ड से लौटे तीन ही वर्ष हुए थे। वह उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति पाकर इंगलैण्ड गया था और फिर बाद में वहीं उसकी नियुक्ति भारतीय हाई-कमीशन में हो गई थी। दो वर्ष के बाद वह भारत

लौटा था और यहां विदेश मन्त्रालय में एक छोटा-मोटा अफसर बन गया था। वेतन हजार से कुछ अधिक ही पाता था। इंगलैण्ड जाने के पूर्व ही उसका विवाह हो चुका था। सच पूछा जाय तो पोझकुज को इसी बात का अफसोस था। यदि साबा अभी कुंआरा होता हो आज बड़े-बड़े लखपति सेठ रिश्ता पाने के लिए पोझकुज के द्वार पर हाजिरी बजाते होते ! किन्तु भाग्य सबसे बली है। पोझकुज अपने इस दुःख का आभास तक किसी को नहीं देती थी।

लॉन में कुर्सी पर बैठी पोझकुज के अंग-अंग ने धूप का भरपूर आनन्द लिया। उसे लगा कि धूप की उष्णता से उसके कन्धों और पीठ की तनी नसें कुछ ढीली पड़ गयीं और जोड़-जोड़ में समाया कश्मीर का जाड़ा धीरे-धीरे उसके शरीर से दूर हो रहा है। उसने दृष्टि उठाकर आकाश की ओर देखा। आकाश का गहरा नीला रंग उसे बहुत भाया। दूसरे तल्ले की बालकनी से सूखने के लिए डाले गये कपड़े धूप में चमक रहे थे···यह विलायती मशीन भी क्या है ? पांच मिनट भी छोरी को ये ढेर सारे कपड़े धोने में नहीं लगे थे और तिस पर भी इतने उजले निकले थे।···पोझकुज यही सोच रही थी कि कपड़ों के बीच उसे छोटी की अंगिया नज़र आई। वह पानी-पानी हो गई। लगा जैसे किसी न उसे ही बीच चौराहे पर नंगा किया हो। त्राहि-त्राहि ! जिन पड़ोसियों ने देखा होगा, उन्होंने मन में क्या कहा होगा ? वह आगे कुछ सोच नहीं सकी। उठकर दीवार की आड़ में सामने के क्वार्टरों की ओर पीठ करके दूब पर बैठ गई।

कुछ देर बाद पोझकुज उठी और फूल तोड़ने लगी। फूल तोड़कर उसने अपनी धोती की छोर में रखे। उसनें सोचा कि क्यों न वह छोटी को लेकर किसी मन्दिर के दर्शन करके लौटे। यहां का बिरला-मन्दिर तो जग-प्रसिद्ध है जिसे देखने के लिए देश-विदेश से लोग आते हैं। आने-जाने में समय ही कितना लगेगा। बहुत हुआ तो एक घण्टा। वहां से लौटकर ही खाना खाना ठीक रहेगा। उसने फूल डायनिंग टेबल पर रखे और कुर्सी सरकाकर खुद भी बैठ गई।···जाने छोटी बाथरूम से कब निकलेगी। भगवान जाने घण्टे भर से वहां बैठी क्या कर रही है। किसे मालूम क्या-क्या मल रही होगी अपने शरीर पर। दिल्ली में रहने से इसके रंग-ढंग ही बदल गये हैं। चलो, फिर भी उस चुड़ैल से हजार दर्जे अच्छी है।

थोड़ी देर बाद बाथरूम का दरवाजा खुलने की आवाज आई और फिर छोटी नीचे उतरी। उसने साड़ी और ब्लाउज़ बदले थे। बाल यद्यपि अभी खुले ही थे फिर भी वह इस समय पोझकुज को भली लगी। बाथरूम में जाने से पहले क्यों उसे गाउन पहनी छोटी से घृणा हो गई थी ?

'हाय माता जी, यह आपने क्या किया ?'' टेबुल पर फूल देखकर छोटी के मुंह से चीख-सी निकली।

पोझकुज के चेहरे का रंग उड़ गया। वह समझ गई कि उससे कोई भारी गलती हुई है।

"माता जी, आपने बिना पूछे ये फूल क्यों तोड़े? और खासकर ये हाली हाक्स क्यों बर्बाद किये?" छोटी के स्वर में फूल तोड़े जाने का दुःख भी था और तोड़ने वाले के प्रति क्रोध भी।

बहू का यह रोषपूर्ण स्वर पोझकुज के मन में तीर की तरह लगा। बात सोने-चांदी की नहीं, केवल कुछ फूलों की थी। तिस पर क्या दिखावा करती है। वहां मुझे काकनी कहकर पुकारती थी और यहां माता जी कहने लगी है। अरे, काहे की माता जी हूं मैं तुम्हारी। मगर क्रोध पीकर वह धीरे से बोल उठी—"मैंने सोचा मन्दिर में दर्शन कर आते।"

"आपको पहले पूछना चाहिए था। इस लोकैलटी में कोई मन्दिर नहीं है। आसपास भी कहीं कोई मन्दिर नहीं है।"

पोझकुज को लगा कि उसकी बहू साफ झूठ बोल रही है। साहस बटोरकर वह बोल उठी—"तू तो मुझे निरा मूर्ख समझती है। कौन नहीं जानता कि दिल्ली का बिरला मन्दिर जग-प्रसिद्ध है जिसे देखने के लिए देश-विदेश से लोग आते हैं?"

"बिड़ला मन्दिर यहां से बहुत दूर है। पहले कनॉट प्लेस जाना पड़ता है। फिर गोल मार्केट और फिर बिड़ला मन्दिर आता है।"

पोझकुज को लगा कि यह भी झूठ है। परसों वह छत पर चली गई थी और जिस ओर सूर्य अस्त होता है उस ओर एक भव्य मन्दिर दीखा था जिसके नीले-कंगूरे धूप में चमक रहे थे। उसके मन ने गवाही दी कि हो न हो, यही बिरला मन्दिर होगा। वह पूरे विश्वास से बोल उठी—"छोटी, ज्यादा चालाक बनने की कोशिश न कर। बोल, वे पश्चिम की तरफ नज़र आने वाले कंगूरे किसी मस्जिद के हैं? मैंने कल ही भाई से पूछा। उसने भी बताया कि यही बिरला मन्दिर है।"

"भाई क्या जानता है? वह बिल्डिंग कोई मन्दिर या मस्जिद नहीं, पाकिस्तान की एम्बेसी यानी पाकिस्तान का दफ्तर है।"

पोझकुज जल-भुन गई। उसकी बहू सचमुच उसे बेवकूफ समझती है। मगर झूठ के पांव कहां? कश्मीर में जहां मुसलमान ही मुसलमान रहते हैं, कहीं पाकिस्तान का कोई दफ्तर नहीं है तो क्या हिन्दुओं की दिल्ली में पाकिस्तान का दफ्तर होगा? वास्तव में उसकी बहू को उसके साथ चलने में शर्म आती होगी। आये, उसे भी क्या पड़ी है। जाने दो, इस बात के लिए छोटी से उलझने की क्या जरूरत है। कहीं ऐसा न हो कि यह भी उस चुड़ैल की तरह उसके आगे चण्डी का रूप धारण करे। वह मन मसोस कर रह गई।

बारह बजे के करीब छोटी ने गैस जलाकर फुलके बनाये। सब्जी सुबह की

ही प्रेशर कुकर में बनी पड़ी थी। उसे गरम किया। फिर डायनिंग टेबुल पर पानी के दो गिलास रखे। एक छोटी प्लेट में प्याज और टमाटर की फांकें सजायीं तथा फ्रिज से एक नीबू निकालकर उसके ऊपर छिड़का।

पोझकुज समझ गई कि खाने की तैयारी हो रही है। उसने छोटी से कहा—"देखो, मैं लंच-बंच नहीं खाऊंगी।"

"क्यों? आप भूखी रहेंगी।"

"भला भूखी क्यों रहूंगी? तुम प्लेट वहीं रखो। मुझे छोटी चिलमची में रोटी दो। मैं यहां नीचे बैठकर खाऊंगी।" यह कहकर वह ऊपर चली गई और जिस फटी-पुरानी दरी में कश्मीर से अपना बिस्तर बांधकर लायी थी, उसे लेकर वापस आ गई। दरी नीचे बिछाकर वह उस पर पालथी मारकर बैठ गई। छोटी कुछ क्षण उसे बस देखती रही और फिर चिलमची में उसके लिए पांच फुलके तथा कटोरी में सब्जी लेकर आ गई। पोझकुज ने पेटीकोट की जेब से एक छोटा-सा तौलिया निकाला और उस पर चिलमची और कटोरी रखकर मजे से रोटी खाने लगी।

रोटी खाकर पोझकुज वहीं लेट गई। छोटी ऊपर अपने बेडरूम में चली गई और आधे घण्टे के बाद कपड़े बदलकर और बाल संवार कर नीचे आई।

"मैं मिस कपूर के यहां जा रही हूं। तीन बजे तक लौटूंगी।" उसने सास से कहा।

पोझकुज खामोश रही। किन्तु उसकी खामोशी छोटी को रोक नहीं सकी। वह हैंड बैग नचाती घर से निकली। पोझकुज चुपचाप अपने क्रोध को पी गई।

वह फिर धूप में बैठने के लिए लॉन में चली आई। धूप की प्यारी-प्यारी गरमी से फिर उसका मन ठीक हो गया—बलिहारी इस धूप की। बस यहां तो केवल इस धूप का ही सुख है। वह धोती कुछ ऊपर करके अपनी टांगें खुजलाने लगी। सहसा उसका ध्यान अपनी एड़ियों की ओर गया। जिनकी चमड़ी सर्दी के कारण फट गई थी। आग लगे कश्मीर के जाड़े को। हाथ-पांव का सत्यानाश होता है। पोझकुज को अचानक बिट्टू की याद आई। हाय, शुरू से बेचारे के पांव की क्या दुर्गत हो गई थी? उस चुड़ैल से लाख कहा था कि बिट्टू को गरम जुराबें और फर-बूट पहनाया करे। मगर वह माने तो बात बने। फर-बूटों का दाम भी कम नहीं चढ़ा है। बेचारा गाशा कहां से खरीद सकता है। तनख्वाह ही कितनी है उसकी? मुश्किल से महीने भर साग-भात चलता है। खुद उसके अपने पास ओवर कोट नहीं था। सर्दी में बेचारा चूजे की तरह ठिठुरता था। अपना-अपना भाग्य!—उसने ठण्डी आह भरी।

उसने आसपास के क्वार्टरों की ओर दृष्टि डाली। हर कहीं खामोशी थी। कहीं कोई नहीं है, जैसे सब मर गए हों। यह भी कैसा पड़ोस है, जहां कोई

किसी को जानता नहीं है; कोई किसी से बात नहीं करता है। वैसे यहां की औरतों की टी-टी-पी-टी उसकी समझ में खाक आती। इन औरतों के नाम भी अजीब हैं। कोई मिसेज जैन कहलाती है, कोई मिसेज सुन्दरम। कोई मिसेज बोस कहलाती है तो कोई कुछ और। इस क्वार्टर की यह सिखनी है जो उसकी भी दादी लगती है मिसेज खेम सिह कहलाती है, वाह रे बूढ़ी।...

स्कूटर की आवाज़ से पोझकुज समझ गई कि साबा आया होगा। हां, साबा ही था। स्कूटर अन्दर लाकर उसने पोझकुज से पूछा—"क्यों मां, दिन अच्छा गुजरा?"

"हां बेटा, अच्छा गुजरा। भगवान करे तू फले-फूले।"

साबा अपने बेड-रूम में चला गया मगर जल्दी ही वापस नीचे आया।

"मां, छोटी कहां है?" उसने पूछा।

"वह मिसेज कपूर के यहां गई है।"

"कौन मिसेज कपूर?"

"अरे वही मिसेज कपूर होगी जो बालों का इतना ऊंचा घोंसला बनाकर यहां आती है। गोरी-गोरी, छरहरी।"

"कौन, मिस कपूर तो नहीं?"

"हां-हां, उसी के यहां तो गई है।"

"तुमने तो कहा मिसेज कपूर के यहां गई है।" साबा मुस्कराया—"जानती हो मिसेज कपूर का मतलब क्या है? कपूर साहब की पत्नी। कपूर साहब बेचारे तो रण्डवे हैं। यह उनकी बेटी है, मिस कपूर।"

"मेरी बला से। मैं ये बारीकियां नहीं जानती।"

"यहां रहोगी तो जाननी ही पड़ेंगी।"

साबा ऊपर अपने कमरे में जाने लगा तो पोझकुज ने कहा—"बेटा, मेरी समझ में नहीं आता कि छोटी की इस औरत के साथ कैसे निभती है। मुझे तो इसके लच्छन अच्छे नहीं दिखाई देते।"

"नहीं, वह बेचारी तो बड़ी भली है। और फिर जैसी भी हो, हमें तो अपना मतलब निकालना है।"

"मतलब?"

"हां, इसका बाप आल इण्डिया रेडियो में बड़ा अफसर है। छोटी वहां नौकरी के लिए कोशिश कर रही है।"

पोझकुज को अचरज हुआ—"तो क्या तुम अब घरवाली से भी नौकरी कराओगे। इतनी बड़ी तनख्वाह क्या तुम्हें पूरी नहीं पड़ती?"

"बात सिर्फ पैसों की ही नहीं है। यह बेचारी यहां घर पर दिन भर अकेली रहती है। इस बेचारी का दिल बहल जाता।—और फिर यदि आमदनी बढ़े तो

बुरा क्या है ? हमारी भी कम जरूरतें नहीं हैं। हमारे पास रेडियो है, पर टी० वी० नहीं है। स्कूटर है, कार नहीं है।"

"यह तो तुम्हारी तृष्णा है।" पोझकुज की समझ में यही आया और यह बात उसने साबा से स्पष्ट कह दी। पर वह पूर्ववत् मुस्कराता रहा। तभी उसकी दृष्टि नीचे बिछी दरी पर पड़ी और उसने मां से पूछा—"यह मैली फटी दरी किसने यहां बिछाई है ?"

"मैंने।" पोझकुज ने डरते-डरते उत्तर दिया जैसे किसी ने उसकी चोरी पकड़ ली हो।

"क्यों ?"

"क्योंकि मैं मेज-कुर्सी पर बैठकर खाना नहीं खा सकती।"

साबा चुप रहा। कुछ देर बाद जब छोटी लौटी तो उसने उसके साथ मशवरा किया। फिर सबने चाय पी और चाय पीकर टैक्सी में पोझकुज को चांदनी चौक ले गए। वहां उन्होंने उसके लिए स्टील की थाली, लकड़ी की चौकी, दो चप्पल, चिकन वाइल की साड़ी और महादेव जी की एक छोटी-सी मूर्ति खरीदी। उस रात उन्होंने पोझकुज के आगे प्लेट के बदले थाली में भात परोसा और उसने चौकी पर बैठकर पहली बार यहां अपने मन से खाना खाया।

सारी रात पोझकुज की आंखें एक पल के लिए भी नहीं लगीं। भांति-भांति के विचार मन में आए।···तो ये कार खरीदने वाले हैं। क्या भाग्य था पगले गोबिन्द राय की इस बेटी का। चलो अच्छा ही है। एक वह हतभागिनी है कि घर वाले को कंगाल बना बैठी—भगवान जाने गाशा बेचारे ने साइकिल खरीदी होगी या नहीं। कहता था अगर किस्तों पर मिल जाती तो जरूर खरीदता। रैनावारी से पैदल दफ्तर जाने से बेचारे की टांगों का क्या हाल होता होगा।

··सच पूछा जाय तो रात को यहां अब रजाई बर्दाश्त नहीं होती है। वहां कश्मीर में कितनी ठंड होगी। साबा से कहूंगी कि गाशा को पत्र लिखे। उसे रात को देर तक घर से बाहर न रहने की ताकीद करे। भगवान न करे यदि उसे कुछ हो गया तो उन छोटे-छोटे मासूम बच्चों का क्या हाल होगा ?

···क्या-क्या सामान चांदनी चौक में बिकता था। बिट्टू के लायक कैसी-कैसी निकर-बुशर्टें थीं। यदि अपने पैसे साथ लिये होते तो उसके लिए दो-एक कपड़े खरीद लेती। चलो, फिर कभी वहां जाऊंगी तो जरूर उसके लिए निकर-बुशर्ट और हाकी-बाल खरीदूंगी। पड़ोसियों की लड़कियों के लिए भी चूड़ियां खरीदनी पड़ेंगी—उस चुड़ैल के लिए भी जैसी-तैसी ही सही एक साड़ी होनी तो चाहिए।

···यदि जिन्दा रही तो साबा मेरे मन की सारी लालसाएं पूरी करेगा। परसों कहने लगा कि अगले महीने मुझे हरिद्वार ले चलेगा। स्वयं उनके मन में हरिद्वार जाकर गंगा नहाने की बड़ी इच्छा थी। परन्तु मरकर भी उनकी अस्थियां

गंगा जी में नहीं पड़ीं। उसके लिए पांच-छः सौ रुपयों की जरूरत थी। कहां से लाता गाशा ये पैसे? यदि साबा यहां होता तो दूसरी बात थी।

तो यहां भी मुसलमान बसते हैं? चांदनी-चौक में वे बुर्केवालियां क्या फिर रही थीं। सहम-सहमकर धीरे-धीरे चलती थीं। क्या इनका जीवन भी हमारी ही भांति भय और आशंका में बीतता होगा? बेचारे···

···अभी अंधेरा ही था कि पोझकुज बिस्तर छोड़कर उठ बैठी। शौच आदि से निवृत्त होकर वह नहाई। फिर वापस अपने कमरे में आकर उसने कम्बल ओढ़ा तथा महादेव जी की मूर्ति सामने रखकर भजन गाने लगी। भजन गाकर उसने एक निराली शान्ति का अनुभव किया। तब वह उठी और छत पर आकर बैठ गई। उसे लगा कि यहां का आकाश बहुत-बहुत बड़ा है। आकाश की असीमता का एहसास उसे पहली बार हुआ। कश्मीर की तरह यहां चारों ओर पहाड़ तथा पहाड़ों के मध्य सिमटा-सिकुड़ा थोड़ा-सा आकाश नहीं था। इस खुले आकाश और यहां के खुले जीवन के बीच उसे एक रहस्यमय सम्बन्ध दीखा। यह खुला आकाश, यह ढेर सारी धूप, यह मुक्त जीवन, यह सुखी घर-गृहस्थी—ये सभी निःसन्देह एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

पोझकुज यही सोच रही थी कि नीचे से साबा ने उसे पुकारा। वह नीचे आई। उसने देखा मेज पर प्यालियां, टोस्ट, अण्डे तथा चाय का अन्य सामान सजाया गया है। साबा कुर्सी पर बैठा अखबार पढ़ रहा था। उसने गाउन पहना था। तभी छोटी चाय की केतली लेकर किचन से बाहर आई। उसने भी गाउन पहना था और बालों को एक लाल रिबन से बांधा था। केतली मेज पर रखकर उसने फ्रिज से जाम और मक्खन निकाला और टोस्टों पर लगाया। पोझकुज ने चाय के साथ दो टोस्ट खाये। उन दोनों ने एक-एक अण्डा भी खाया। उन्हें, विशेषकर छोटी को अण्डा खाते देखकर पोझकुज को बिट्टू याद आया। बेचारा सूखकर कांटा हो गया है मगर अभागे को पाव भर दूध भी नसीब नहीं होता। यदि मां ने उसे उसके साथ भेजा होता तो यहां सेहत बना लेता।

चाय पीकर साबा अपने कमरे में चला गया। छोटी ने जूठी प्यालियां और प्लेटें सिंक में मेहरी के साफ करने के लिए रखीं और वह भी ऊपर चली गई। कुछ समय बाद पति-पत्नी दोनों कपड़े बदलकर नीचे आए।

"मैं दफ्तर जा रहा हूं। यह मेरे साथ मार्केट तक जाएगी और मीट लेकर लौटेगी।" कहकर साबा ने स्कूटर बाहर निकाला। स्कूटर स्टार्ट करके वह खुद बैठा और उसके कन्धे पर हाथ रखकर छोटी बैठ गई। स्कूटर फट-फट करके सड़क पर भागने लगा और कुछ ही क्षणों में वे दोनों उसकी आंखों से ओझल हो गए।··· जाने गाशा ने साइकिल खरीदी भी होगी या नहीं? मेरे पास भी पचास-साठ रुपए होंगे। यदि उनसे काम बनता तो मनीआर्डर करके भेज देती।

वह काफी देर तक इन्हीं ख्यालों में डूबी रही। उसका ध्यान तब टूटा जब उसने अपने सामने मिस कपूर को खड़ा पाया। उसने हाथ जोड़कर पोझकुज को नमस्कार किया और पूछा—"मिसेज भान घर में ही हैं?"

पोझकुज समझ गई कि उसने क्या पूछा है पर जवाब कैसे दे? आखिर उसने जैसे-तैसे अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में उसे बता ही दिया कि छोटी साबा के साथ मीट लाने मार्केट गई है।

उसकी बात सुनकर मिस कपूर को हंसी आई। पोझकुज को बुरा लगा। उसने बेदिली से उसे बैठने के लिए कहा। मगर मिस कपूर उसके पास न बैठकर सीधे ड्राइंग रूम में जाकर बैठ गई।

हूं, जैसे रांड के अपने बाप का घर है। पोझकुज जल-भुन गई। अपमान के एहसास से चेहरा तमतमा उठा। वह उठी और लान में आकर धूप में बैठ गई। छोटी मार्केट से लौटी तो वह उससे बोल उठी—"जाओ, अन्दर मिसेज कपूर इंतिजार कर रही है।"

"माता जी कितनी बार आपसे कहा है मिसेज कपूर नहीं, मिस कपूर कहा करें।"

"मिस कपूर है या मिसेज कपूर, जाने मेरी बला। मेरी बातों पर हंसने लगी, मुंहजली कहीं की।"

"आपने गलत समझा होगा। यह बेचारी वैसी नहीं है।" कहकर छोटी ड्राइंग रूम में चली गई।

बहू ने उसकी बात का विश्वास नहीं किया, यह बात पोझकुज को मिसेज कपूर की हंसी से अधिक चुभ गई। गलती उसी की थी। उसे छोटी से मिस कपूर की शिकायत नहीं करनी चाहिए थी। इन मियां-बीबी को इस रांड में सुरखाब के पर नजर आते हैं। नहीं आयेंगे क्या? इसके बाप से मतलब जो निकालना है। जिस-तिस के साथ सोकर भी मिस की मिस, वाह री मुंहजली।

धूप की सुखद गरमी से पोझकुज को नींद-सी आने लगी। सहसा ड्राइंग रूम से मुक्त हंसी की एक लहर-सी आ गई। पोझकुज को यकीन हो गया कि उसी का मजाक उड़ाया जा रहा है। बस अब और नहीं। उसने मन में फैसला किया कि अब यहां और ठहरना ठीक नहीं होगा। यदि कोई साथ वाला मिल जाता तो वह इसी सप्ताह कश्मीर चली जाती और यहां से अपने साथ और कुछ नहीं, सिर्फ टोकरी भर धूप ले जाती।

[साप्ताहिक हिन्दुस्तान से साभार]

गुमशुदा

□ वेद राही

पिछले कई सालों में बीसियों बार मैंने सोचा कि उसके सम्बन्ध में लिखूं, लेकिन घटनाएं इतनी बिखरी-बिखरी हैं कि हर बार किसी-न-किसी कोण से कहानी बनने से रह जाती है। लगता है कृत्रिम सांचे में ढलकर कहानी का वह मकसद पूरा न हो सकेगा, जिसके लिए उसने मुझसे अपने बारे में कहानी लिखने का आग्रह किया था।

वह उस फिलम-कम्पनी के दफ्तर में चपरासी था, जहां मैं सहायक निर्देशक था। उसका काम चाय-पानी पिलाना, बाहर से सिगरेट-पान आदि लाकर देना, इस टेबल पर से उस टेबल पर कागज पहुंचाना आदि था। जिन दिनों शूटिंग होती, तब ऐसे ही काम उसे सेट पर करने होते थे। मैं देखता कि वह ये सारे काम दूसरे लड़कों की तरह नहीं करता। उसके उठने-बैठने में एक हलकी-सी सुस्ती और एक अलगाव-सा था। लगता कि इन सारे कामों से उसे कोई वास्ता नहीं है। पर इस बेवास्तापन से वह कोई काम गलत नहीं करता था। उससे किसी को कोई शिकायत नहीं थी।

जब उसे कोई काम न होता तो वह स्टूल पर बैठा-बैठा अक्सर कुछ लिखता रहता था। दूसरे लड़कों की तरह वह कभी आफिस से बाहर जाकर गप्पें नहीं हांकता था। न ताश खेलता, न सिगरेट फूंकता था। मुझे अच्छी तरह याद है वह चाय भी नहीं पीता था। मेरा काम क्योंकि शूटिंग के दिनों में ही ज्यादा रहता था, और आफिस में अक्सर वेकार ही बैठना पड़ता था, इसलिए अनजाने में भी मुझे उसे देखने का मौका मिलता रहता था।

एक बार दीवाली के दिनों में मैंने उसे कहा, "जसवंत, यहां स्टूडियो में कोई रंग करने वाला लड़का हो तो बुलाना, मुझे अपने घर में रंग करवाना है।" उसने जवाब दिया, "आप कहें तो मैं ही रंग कर दूं।"

"तुम कर लोगे?"

"क्यों नहीं?"

मैंने उसे ऑफिस से छुट्टी दिलवा दी। मुझसे पैसे लेकर वह रंग के डिब्बे,

ब्रुश बगैरा ले आया, दिन भर वह दीमक की तरह लगा रहा। दूसरे दिन रविवार था। पूरी सफाई करके उसने सामान ठीक ढंग से जमा दिया। खाना खिलाकर मेरी पत्नी ने उसे पांच रुपये दिए। नोट जेब में रखकर वह चुपचाप चला गया।

एक और बात भी याद है मुझे, शूटिंग के सिलसिले में हमारा सारा यूनिट कश्मीर गया हुआ था। उसने मेरे पास आकर पूछा, "आप तो कश्मीर के ही रहने वाले हैं, कोई अच्छी-सी दुकान बताइए, जहां से सस्ते में हार और कांटे मिल जाएं।" मैंने उसे दुकान का पता बता दिया। चीजें लाकर उसने मुझे दिखलाई भी। मैंने सोचा शायद अपने घर वालों के लिए ले जा रहा है।

यह तो बाद में मालूम हुआ कि उसका कोई घर नहीं है। यानी घर में कोई अपना नहीं है। दुनिया में वह बिलकुल अकेला था। इसीलिए कोई उससे पूरा नाम पूछता तो कहता, "जसवन्त सिंह अकेला।"

एक दिन वह मेरे पास आकर बोला, " 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में आपकी पहचान वाला कोई है?"

"है तो।" मैंने कहा।

"मेरा एक काम कर दीजिए। मुझे टाइम्स और नवभारत टाइम्स की बीस बरस पुरानी फाइलें देखनी हैं। क्या वहां किसी के नाम चिट्ठी दे सकते हैं कि मैं वे फाइलें देख सकूं?"

"तुम्हें वे फाइलें क्यों देखनी हैं?" मैंने पूछा।

"मुझे अपने मां-बाप का पता करना है।"

और तब उसने अपने बारे में मुझे सब कुछ बताया। सब कुछ का मतलब जितना वह जानता था। जितना वह नहीं जानता था, उसी की उसे तलाश थी। उसे ही पाने के लिए वह जीते हुए मर रहा था, मरते हुए जी रहा था।

स्टूल पर बेकार बैठा-बैठा जो वह लिखता रहता था, वह उसकी धुंधलाई हुई कहानी थी—उसी की टूटी-फूटी भाषा में। मैं उसी के शब्दों में उसका एहवाल आपके सामने रखना चाहता हूं। मैंने उसके बयान में कोई फेर-बदल नहीं किया। सिर्फ कुछ शब्दों के हिज्जे ठीक कर दिए हैं, और कुछ शब्दों को आगे-पीछे कर दिया है, ताकि बात ठीक से समझ में आ जाए।

एक बड़े फुलस्केप पेपर पर उसने यों लिखा है—

"सन् १९४७ में मैं गुम हो गया था। मैं—मेरा भाई और मेरा एक दोस्त—हम सब खेलते-खेलते घर से स्टेशन पर आ गए। उस समय ट्रेन में बहुत से मिलिट्री के सिपाही बैठे हुए थे। उन्होंने मुझे ट्रेन में अपने पास बिठा लिया और मुझे खाने को बिस्कुट दिए। मैं बिस्कुट खाते-खाते सो गया। ट्रेन उस समय चल रही थी। जब मेरी आंख खुली तो मेरे पास पुलिस का आदमी खड़ा था। उसने मुझसे कुछ

पूछा। मैंने मां-बाप का नाम वगैरह सब बातें बता दीं। वह मुझे बम्बई की उमरखेड़ी जेल में ले गया। वहां और भी बच्चे थे। मैं बच्चों में इस तरह मिल गया कि मैं अपने माता-पिता को भूल गया। यूं समझो कि मेरी याद खो गई। महीना-पन्द्रह दिन के बाद मेरी बदली बी० जे० बालाश्रम, माटुन्गा, बम्बई में हो गई। वहां मुझे बारह साल के लिए भेजा गया था। वहां भी बहुत से लड़के-लड़कियां थे। मैं उनमें घुल-मिल गया। एक दिन एक दोस्त ने मेरे बारे में पूछा कि मेरे माता-पिता कहां हैं? उसी दिन से मेरी सोई हुई याद जाग उठी। मुझे याद आया कि मेरे पिताजी थे, मेरी मां थी, मेरा भाई था। कहां हैं वे सब? क्या नाम है उनका? वे सब कहां रहते हैं? घर कहां है? मुझे कुछ याद न आया। और मैं अपने घर की तलाश में उस आश्रम से भाग निकला।

सन् १९५० से १९६६ तक माता-पिता की तलाश में भटका—बहुत भटका मगर कुछ पता न चला। एक बार मैंने अखबार में इश्तहार भी दिया। खोए हुए बेटों के कई माता-पिताओं ने मुझे बुलाया भी। मगर मेरा कोई न निकला। मैं दो बार बी० जे० होम माटुन्गा गया। उमरखेड़ी गया कि शायद मैंने बचपन में जो-जो बातें बताई थीं वे सब रजिस्टर में दर्ज हों मगर मुझे किसी ने वे रजिस्टर नहीं देखने दिए।

मुझे यकीन है कि एक-न-एक दिन मेरी १९ साल की मेहनत जरूर कामयाब होगी और मैं माता-पिता को पा लूंगा। मेरे माता-पिता जरूर जिंदा होंगे और जरूर मिलेंगे।

मुझे घर की कुछ बातें याद हैं। हम घर में कैसे रहते थे, पड़ोस में क्या था—सब याद है। मगर माता-पिता का नाम और उस शहर का नाम याद नहीं।"

नीचे उसने हिन्दी और अंग्रेजी में अपने हस्ताक्षर किए हैं—'जसवन्त सिह अकेला'।

एक दूसरे कागज पर यों लिखा है—

(मेरे घर की कुछ आंखों देखी बातें और यादें)

हमारे दो घर थे। एक मां-बाप का, एक रिश्तेदार का। रिश्तेदार के घर में दो या तीन कमरे थे। घर के पीछे एक खुला जंगल था। और वहां पर बंदर भी बहुत आते थे। घर के सामने छोटा-सा अस्पताल था। अस्पताल के सामने एक बड़ी मिल थी चीनी की। मैं शाम को चीनी लेने बैलगाड़ियों के पीछे भागा करता था।

मिल के पास बाजार और बाजार के साथ ही रेलवे स्टेशन था।

घर में मां घाघरा पहनती थी और पिताजी जब काम पर से आते थे तब वह मिलिट्री के कपड़े पहने होते थे।

घर के साथ और भी मकान थे। घर में हर चीज थी। खाने, पीने, रहने की सब बातों में घर अच्छा था।

मां मुझे मुन्ना कहती थी।

पिता जी भी मुन्ना कहते थे।

हम तीन आदमी थे।

यह है मेरे घर की कहानी। मां का घर था या रिश्तेदार का घर—यह मुझे नहीं मालूम, तब मेरी उमर तीन-चार साल की थी।

इस विवरण के साथ ही जसवन्त ने एक नक्शा वनाया है जिसमें उसने अपने घर और घर के आस-पास की जगहों को चिह्नित करने का प्रयत्न किया है। वह नक्शा मेरे पास सुरक्षित है।

एक और कागज पर उसने दूसरे घर की यादों को कुरेदा है, वह यों है—

मेरे घर की आंखों देखी बातें और यादें—

पक्के क्वार्टर्स थे। हमारे साथ और भी कई क्वार्टर्स थे। पीछे दूध की एक मिल थी या कोई और कारखाना था। मैं और मेरे पिताजी वहां मक्खन लेने जाया करते थे। मिल के पीछे जंगल था। क्वार्टर्स के सामने थोड़ी दूरी पर वाजार-सिनेमा था। एक बार माता-पिता मुझे और मेरे भाई को कोई फिलम दिखाने ले गए थे। रेलगाड़ी को देखकर मैं डर गया था और रोने लगा था। एक वार हम सब नुमाइश देखने गए थे। हम सब शाम को घूमने जाया करते थे। मेन रोड पर एक छोटा-सा पुल था, वहां तक जाया करते थे। फिर घर वापस आ जाते थे। घर में एक छोटी-सी बंदूक थी। पिताजी शाम को काम पर से आते, तब वंदूक से किवाड़ पर निशाना लगाते थे। मैं और मेरा भाई देखा करते थे। घर में एक दिलरुबा भी था। पिताजी रात को वजाते थे।

एक रात हमारे पड़ोस में चोरी हो गई। हम उस वक्त खाना खा रहे थे। पिताजी और मां आवाज़ें सुनकर चले गए। मैं और मेरा भाई डरकर रोने लगे। थोड़ी देर में मां भी आ गई। मां घाघरा पहनती थी। पिताजी पैंट और कोट पहनते थे। मैं और मेरा भाई हाफपैंट और कमीज पहनते थे। घर में सब तरह का आराम था। अच्छा खाते-पीते थे। घर में चार आदमी थे।

घर दो कमरे का था।

यह है दूसरे घर की कहानी।

घर में मुझे मुन्ना कहते थे।

इस विवरण के साथ भी एक नक्शा है। इस नक्शे में भी लगभग वैसे ही जगहों को चिह्नित किया गया है। इन दो घरों के अलग-अलग होने का रहस्य क्या है, दूसरा घर कौन-से रिश्तेदार का है, वहां भाई का जिक्र क्यों नहीं?—सब गडमड है। लगता है यादों के एक जाल में वह फंस गया है। इसमें कितनी

वास्तविकता है और कितनी कल्पना——इसका उसे स्वयं पता नहीं।

इन्हीं कागजों के साथ तत्कालीन कांग्रेस-अध्यक्ष श्री कामराज के नाम टाइप किए हुए एक लेटर की कापी भी है जिसमें प्रार्थना की गई है कि महाराष्ट्र सरकार से कहा जाए कि वह मेरे मां-बाप को ढूंढने में मेरी मदद करे।

जसवंत ने मुझे बताया कि श्री कामराज को चिट्ठी लिखने के कुछ महीनों बाद दो सिपाही उसके पास आये थे। वह उन सिपाहियों को लेकर माटुंगा के बालाश्रम में गया था। वहां की सबसे पुरानी फाइलें उसने निकलवाई थीं ताकि उनमें उसकी खोई हुई जिन्दगी का सुराग मिल सके, मगर कुछ हासिल नहीं हुआ।

बाद में वह टाइम्स ऑफ इण्डिया की फाइलें भी देख आया था। मगर उसकी तलाश खत्म नहीं हुई। उसका ख्याल था जब वह गुम हुआ था, शायद उसके माता-पिता ने तब कोई इश्तहार दिया हो।

वह चाहता था, मैं उसकी कहानी लिखूं जिसमें यह सारी बातें हों। उसे उम्मीद थी कि शायद उसके माता-पिता या भाई की नजरों से भी यह कहानी गुजरे। इसीलिए उसने मुझे सारे कागजात नक्शों सहित दे दिए थे। मगर मैं उसकी कहानी नहीं लिख सका। आखिर लिखने के लिए कुछ घटनाओं का जान लेना ही तो काफी नहीं होता। कुछ और भी तो चाहिए। इसी 'कुछ और' के अभाव में समय बीतता चला गया और इसी सिलसिले की कुछ और कड़ियां बनती चली गईं।

"तुम्हारा नाम जसवंत सिंह किसने रखा?" मैंने एक बार उससे पूछा।

"आश्रम से भागने के बाद मैं ज्यादा समय जिस परिवार में रहा, यह नाम मुझे उन्हीं लोगों ने दिया और मैंने रख लिया। वह एक राजपूत परिवार था।"

"तुम्हें यह नाम अच्छा लगता है?"

"अब तो यही मेरा नाम है।"

एक बार हम बम्बई से थोड़ी ही दूर एक जगह आउटडोर शूटिंग के लिए गए हुए थे। वापसी पर जब हम ट्रेन पर आ रहे थे तो मैंने देखा जसवंत के हाथ में पांच जिंदा केकड़ों का एक गुच्छा है। दूसरे सब लड़के जसवंत और उसके केकड़ों के साथ छेड़खानी कर रहे थे।

मैंने पूछा, "ये केकड़े किसके लिए ले जा रहे हो?"

एक दूसरे लड़के ने तुरन्त हंसते हुए कहा, "जसवंत को अपनी आंटी का बहुत ख्याल रहता है।"

"कौन आंटी?" मुझे सुनकर हैरानी हुई।

"जिसकी लड़की से यह शादी करना चाहता है।"

"इसीलिए तो यह उसे मस्का लगाता रहता है। इतनी दूर से उसके लिए केकड़े ले जा रहा है क्योंकि आंटी को केकड़ों का सूप बहुत पसंद है।"

यह सब सुनते हुए वह मुस्करा रहा था। और मैं उसके हाथ में पकड़ी रस्सी से झूलते हुए केकड़ों को देख रहा था। हवा में लगातार पांव हिलाते हुए वे कहीं भी पहुंच नहीं पा रहे थे। वे पहुंच भी कहां सकते थे, मुझे लगा कि जसवंत के बचपन की यादें भी इन्हीं केकड़ों के पांवों जैसी हैं—हवा में संघर्षरत···निराधार ···व्यर्थ···।

एक दिन पता चला कि किन्हीं लोगों ने जसवंत को बहुत पीटा है और पुलिस उसे पकड़ कर ले गई है। तभी उसके रोमांस की पूरी कैफियत मालूम हुई।

वह अपने एक दोस्त के साथ एक झोंपड़े में रहता था। साथ के झोंपड़े में एक क्रिश्चियन परिवार था। उनकी एक लड़की थी जो जसवंत को बहुत चाहती थी। मगर उसके मां-बाप इस सम्बन्ध के हक में नहीं थे। लड़की का बाप एक घोर शराबी था और कोई काम-धंधा नहीं करता था। वह चाहता था कि लड़की के बदले में कहीं से कुछ धन प्राप्त हो जाए। जसवंत सद्भाव में थोड़े-थोड़े करके समय-असमय दो-चार सौ रुपये जो दे सकता था, दे चुका था। उन लोगों के पास बहाना यह था कि जसवंत क्योंकि क्रिश्चियन नहीं है इसलिए वे लड़की की शादी उससे नहीं करेंगे। जसवंत किसी तरह अपना धर्म-परिवर्तन नहीं करना चाहता था। उसकी स्मृति में उसके माता-पिता हिन्दू थे, वह तो उन्हें पाना चाहता था। उसे डर था धर्म छोड़कर कहीं पाकर भी वह उन्हें खो न दे।

बात आगे बढ़ी तो दोनों का मिलना-जुलना बंद कर दिया गया। मगर वे फिर भी मिलते रहते थे। एक दिन दोनों एक साथ पकड़े गए। क्योंकि लड़की अभी नाबालिग थी इसलिए पुलिस को भी बुला लिया गया। झूठे-सच्चे बयानात का नतीजा यह निकला कि उसे हवालात में बंद कर दिया गया।

बड़ी मुश्किल से वह वहां से छूटा।

मगर इन चंद दिनों में ही उसका चेहरा बिल्कुल मुरझा गया था। पहले ही वह दुबला-पतला और सूखा हुआ था, अब तो जैसे वह निचुड़ ही गया था। उसकी ओर देखकर अक्सर मैं सोचता कि आज जबकि लोग सम्बन्धों और रिश्तों को अर्थहीन मानते जा रहे हैं, यह नामुराद जसवंत क्यों उन्हीं रिश्तों के लिए घुल घुलकर मर रहा है? क्यों नहीं इसे अपने अकेले होने में मुक्ति का एहसास होता? कुछ महीने और बीत गए।

एक दिन वह मुझे अलग ले जाकर बोला, "आप मेरी खातिर एक काम करेंगे?"

"क्या बात है?" मैंने पूछा।

"परसों बांद्रा कोर्ट में मेरी शादी होगी। क्या आप साक्षी देने वहां आएंगे?"

मैं तुरन्त कोई उत्तर नहीं दे सका। उसने बताया कि लड़की की उमर अब अठारह बरस हो चुकी है। एक महीना पहले उन्होंने कोर्ट में अर्जी दे दी थी।

परसों बाकायदा सिविल मैरिज होगी।

"लड़की के मां-बाप को पता है ?"

"नहीं।"

ख्याल आया वहां कोई झगड़ा-फसाद न हो जाए। लड़की का बाप गुण्डों को लेकर वहां पहुंच सकता है। कुछ भी हो सकता है।

मेरे अलावा जसवंत ने लछमनदास और शर्मा जी से साक्षी देने का अनुरोध किया। शर्मा जी ने हौसला बढ़ाया, "कुछ नहीं होगा भई, हमें पहुंचना ही चाहिए।"

तीसरे दिन मैं और लछमनदास समय से दस मिनट पहले ही वहां पहुंच गए। अन्त तक शर्मा जी नदारद थे।

ठीक समय पर जसवंत होने वाली दुल्हन के साथ वहां पहुंचा। उसी के समान दुबली-पतली और सांवली, चेहरे पर न लज्जा, न घबराहट। एक दृढ़ता थी, आंखों में संकल्प था। शायद उसे मालूम था कि वह यहां जिसकी होने आई है, उसका इस दुनिया में और कोई नहीं। जसवंत के दो दोस्त फूलों के दो हार और मिठाई का डिब्बा लेकर वहां पहुंच गए।

बड़ी बेचैनी से सब बांद्रा कोर्ट के अहाते में खड़े थे। रजिस्ट्रार के बुलावे का इन्तजार था। समय था कि जैसे रुक ही गया था। सबकी आंखों में शंकाएं थीं। एक डर था। कोई भी आ सकता था। कुछ भी हो सकता था। मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ। रजिस्ट्रार का बुलावा आया और सबके साथ मैं और लछमनदास भी अंदर बेंच पर जा बैठे। पुरोहित ने जाने क्या-क्या बोला, क्या-क्या पूछा और विवाह हो गया। साक्षियां हुईं। दूल्हा-दुल्हन ने एक-दूसरे को फूल-मालाएं पहनाईं। मिठाई बांटी गई। मैं सोच रहा था, जसवंत के मां-बाप कहीं भी हों, इस वक्त वे भी जरूर कोई मीठी चीज खा रहे होंगे। उनके बेटे को आज सम्बन्धों का एक सूत्र मिल गया था।

काश ! इसके बाद की घटनाओं का मुझे कुछ पता न होता।

उस दिन जसवंत को कोई छेड़ रहा था कि वह बच्चे का बाप बनने वाला है ! मैंने पूछा तो वह एक महीन-सी मुस्कराहट बिखेर कर रह गया।

शादी के बाद उसने मुझे कभी नहीं पूछा कि उसने अपने बारे में लिखे हुए जो कागजात मुझे दिए थे, मैंने उन्हें लेकर कोई कहानी लिखी है या नहीं ? शायद उसे याद ही नहीं रहा था कि उसे मां-बाप की तलाश करनी है। जसवंत सिंह सिर्फ जसवंतसिंह रह गया था, अकेला नहीं।

मगर आगे जो हुआ समझ में नहीं आता, कैसे लिखूं ? भला इतनी जल्दी भी कोई कहानी खत्म होती है ? अन्तिम कड़ी वह काली रात है जब जसवंत की पत्नी ने जहर खाकर आत्महत्या कर ली। खुद मरकर उसने अपने पेट में जीवन

पाते हुए एक जीव की हत्या भी कर दी। डॉक्टरों ने बहुत कोशिश की बचाने की मगर बचा नहीं पाए। शायद मरने से पहले वह एक चिट्ठी लिखकर छोड़ गई थी। सुना गया कि उसके मां-बाप उसे बहुत तंग करते थे। वे चाहते थे वह जसवन्त को छोड़ दे, या शर्त रखते थे कि वह जसवंत को धर्म-परिवर्तन पर मजबूर कर दे। मगर जसवंत और कुछ भी कर सकता था, अपने छूटे हुए माता-पिता का धर्म नहीं त्याग सकता था।

मेरी आंखों के सामने कई दिनों तक उसकी पत्नी की सूरत घूमती रही। शादी के समय उसके चेहरे पर जो दृढ़ता थी, निश्चय ही वह जहर खाते समय भी रही होगी और पोस्टमार्टम के समय भी।

जसवंत बम्बई छोड़ गया है लेकिन कभी-कभार मुझे चिट्ठी लिखता रहता है। इसीलिए मैंने जैसे-तैसे यह टुकड़ा-टुकड़ा कहानी लिख दी है। इसमें जसवंत के बचपन की यादों जैसी घटनाएं हैं—बिखरी-बिखरी—हवा में लटके हुए केकड़ों के पांवों की तरह छटपटाती हुई। यह सब इस उम्मीद के साथ लिखा है कि शायद उन बदनसीब माता-पिता की नजरों से यह सब गुजर जाए जो अपने बेटे को पाने की उम्मीद छोड़ बैठे हैं—जिन्दगी के बेरहम तकाजों को पूरा करते हुए उसे भूल गए हैं।

कर्फ्यू

□ रतन लाल शांत

सोमनाथ ने गुलामदीन और इसके साथी दो सिपाहियों को, यों कहें कि पिता लाला को सौंप दिया और खुद ऊपर चला गया। दीवार पर लटके कोट की जेबें टटोलीं और जब वहां केवल तीस पैसे पाये तो उसे याद आ गया कि आज उन्नीस तारीख है। पत्नी से पैसे मांग लेने की जुर्रत वह कर न सका क्योंकि वह उसे समझा न सका था कि उसने इस महीने की पूरी तनख्वाह क्या की? कर्फ्यू लगे तेरह दिन हुए थे। इन दिनों उसका खर्चा खास बढ़ा नहीं। बल्कि जो पैसा चाय का कप-आधा कप पीने आदि पर स्कूल में खर्च हुआ करता है वह तो अवश्य घटा। सिगरेटों की संख्या भी इन दिनों आधी से कम हो गई, क्योंकि दिन के चार-पांच घण्टे वह यहीं इसी कोठरी में बिताया करता। उसका पिता लाला यहां चला आता, लकड़ी का एक पुराना संदूक खिड़की के पास घसीट ले जाता। खिड़की तो पहले ही बन्द कर देता। फिर संदूक पर खड़ा होकर रोशनदान की दरारों में से कर्फ्यू से वीरान हो गई सड़क का तमाशा देखता और पुलिस वालों के घूमते आकारों के साथ-साथ-पुतलियां भी घुमाता।

फिर सोमनाथ की तनख्वाह कैसे खर्च हुई? वह स्वयं को समझाता कि कर्फ्यू के कारण सब निठल्ले हो गये···गर्मी बढ़ने लगी तो दही-लस्सी के लिए हाय-हाय मचने लगी। नहीं तो पेट बढ़ने लगा। धोखे-बहाने से ही सही पुलिस वालों की मिन्नत-मनुहार करके इन्हीं दिनों दस-बारह बार मांस मंगाया गया। बैठे-बैठे और फुर्सत की ज्यादती के कारण सब के स्वाद विविध होने लगे और कभी घी, कभी मिठाई आदि की फरमाइशें भी सोमनाथ पूरी करता गया। यह और बात है कि बैठे-बैठे केवल वह खुद ऊब चुका था। शेष सब—उसकी पत्नी, मां या दादी मामूल की तरह खिड़कियों पर बैठे जिन्दगी का आनन्द ले रहे थे। पिता खिड़कियों और दरवाजों की दरारों में से तमाशा देखता और लड़के को कमेंट्री सुना-सुना कर मन बहलाया करता। सिर्फ वही था जो कोठरी की दीवार से पीठ टिकाए या तो दीवार का मिट्टी का पलस्तर या अपनी पीठ घिसाता रहता।

मगर यह सब उसका खुद को समझाने का तर्क मात्र था। न उसने यह बात

कभी पत्नी से कही और न उसी ने पूछकर जानने की कोशिश की। इस समय जेब में केवल तीस पैसे पाकर उसे पसीना छूटने लगा। यह हिम्मत भी नहीं थी कि अभी नीचे चला जाता और गुलामदीन से कह देता कि चाय तो बन गई है लेकिन खाली पीनी होगी। न ही उसका जी कर सकता था कि पिता से पैसे मांग लेता। आज सुबह कितने जोरजब्र के बाद गुलामदीन को चाय पीने पर राजी कर सका था। जब सोमनाथ पट्टन स्कूल में मास्टर हुआ था तो गुलामदीन उसके पहले प्रिय शिष्यों में से एक था। स्कूल का यह अकेला लड़का था जिसे जीप, एक सरकारी जीप, स्कूल छोड़ जाती और सायं फिर लेने आ जाती। कई बार सोमनाथ इसी जीप से पट्टन से श्रीनगर आया। स्कूल में सोमनाथ इसी बारसूख लड़के के कारण एक सफल मास्टर हो सका। इसलिए वह गुलामदीन के साथ मास्टरी की अपेक्षा मित्रता करता था। गुलामदीन मैट्रिक में कभी पास न हुआ, इसका दुख उसकी अपेक्षा स्वयं सोमनाथ को था। बहुत फायदा उठाया सोमनाथ ने गुलामदीन की दोस्ती का लेकिन सबसे बढ़कर पट्टन से श्रीनगर उसकी बदली इसी कारण हो सकी। कर्फ्यू की आज की सुबह जब सोमनाथ ने सांगोपांग गुलामदीन को देखा तो वह मुंह न फेर सका। वह हैरान भी हुआ। यह पुलिस इंस्पेक्टर गुलामदीन था। बीस एक कांस्टेबल लेकर रात भर ड्यूटी देता रहा होगा, सोमनाथ ने खिड़की पर खड़े-खड़े ही इसकी काफी मिन्नत समाजत की। कहा कि रतजगा किया होगा…दो घूंट चाय पीते जाना। जब्र किया और आखिर मना लिया उसे। और अब सोमनाथ देखता है कि उसके पास केवल तीस पैसे हैं। इनसे पाव भर दूध लिया जा सकता है, रोटी नहीं।

सिर्फ एक रास्ता था—मां से पैसे मांगना। सोमनाथ ने जब उससे कहा तो उसने पहले अपनी कही—"देख रे! ये खिड़कियों के पट और किवाड़ उसे दिखलाना। टूटे कांच के टुकड़े दिखलाना। पूरी बात समझाना।"

"उसे यही बात सुनाऊं, जो वह जान न पाए, तो अच्छा?" उसने मां को डांटा।

खिड़कियों के कांच कर्फ्यू लगने से एक दिन पूर्व एक क्षुब्ध जुलूस ने तोड़ डाले थे। सोमनाथ सोचता कि कोई उसका नाम न जाने, उसकी बात कहीं न हो। किसी को मालूम न हो कि सड़क के किनारे वाला यह मकान उसी का है और जुलूस वाले दिन उसी का नुकसान हुआ था। रुपये उधार लेकर उसने खिड़कियों की मरम्मत कराई होती, कांच भी लगवाए होते मगर कर्फ्यू था। घण्टा भर कर्फ्यू खुलता तो सब्जी, रोटी वालों की दुकानें ही खुलतीं, शीशे वालों की नहीं। नगर के जिस भाग में सारी दुकानें रोज की तरह खुली रहतीं और जहां कर्फ्यू नहीं लगा था, वहां जाने के लिए पास होना चाहिए था जो मास्टरों को दिया नहीं गया था। सोमनाथ उस क्षण की सोचकर घबरा उठता जब कर्फ्यू हटा दिया जायेगा

और स्थिति के सामान्य हो जाने पर उसके मकान के सामने भीड़ जमा हुआ करेगी…

"इस मकान की खिड़कियां तोड़ दी गयीं।"

"कांच चूर-चूर किए गए।"

"पत्थर बरसाए गये।"

फिर वह खुद भी भीड़ में घुसकर यदि किसी से इसका कारण पूछेगा तो उसे सूचित किया जाएगा कि जुलूस पर ऊपर से पहले पत्थर बरसाए गये फिर गर्म मांड डाल दी गई, तेजाब की बोतलें फेंककर तोड़ दी गयीं आदि। उस समय वह किस-किस को समझाता फिरेगा कि वहां उस समय उसकी लूली और बहरी दादी थी जो सामान्य दिनों की तरह घिसट-घिसटकर खिड़की के पास आकर अपनी मल चिलमची फेंक आयी थी और फिर पत्थरों की वर्षा से शदीद जख्मी कर दी गई थी। जुलूस और हड़ताल की खबर सुनकर ही सोमनाथ की पत्नी और मां बच्चों के स्कूल चली गई थीं; उनको लिवाने के लिए, और सोमनाथ का पिता हब्बाकदल में एक और जुलूस में सम्मिलित होकर नारों की आवाज में आवाज मिला रहा था।

वह बीवी का कोई जेवर बेच डालता और खिड़कियां-द्वार बनवाता लेकिन कर्फ्यू का क्या करता? अब उसका एक दोस्त और एक बड़े आदमी का बेटा इंस्पेक्टर गुलामदीन उसके यहां आया है। तो भला उससे ऐसी बातें कही जानी चाहिए? कभी नहीं। खैर सोमनाथ ने मां का तर्क अनसुना कर दिया और उससे पैसे ले लिये। पैसे लेकर सीधा नीचे चला गया। भीतर कमरे से गुलामदीन और पिता के वार्तालाप की भनक कानों में पड़ी। कर्फ्यू के दौरान पुलिस वालों का रवैया विचाराधीन था। उसे लगा कि वह इस समय भीतर चलकर इस बातचीत की दिशा नहीं बदलता या विषयांतर नहीं करता है तो लाला जाने क्या-क्या कहता जाएगा। लाला कह रहा था—

"कश्मीरी तो बस कश्मीरी हैं। ये 'बाहर' की पुलिस ससुरी…खिड़की से भात सब्जी की जूठन भी नहीं फेंकने देती है। कूड़ा आखिर ले कहां जाएं। इतना हो-हल्ला करते हैं कमबख्त कि बेचारे बच्चे डरकर कोनों में दुबक जाते हैं…"

लाला के बोलने का ढंग इतना कृत्रिम था कि यथार्थ उससे छिपता नहीं था। निस्संदेह बाहरी पुलिस कई मामलों में कठोरता बरतती थी। जूठन या फालतू पानी आदि वे कभी सड़क पर फेंकने नहीं दिया करते थे। कर्फ्यू के बीच की घण्टे भर की छूट में सोमनाथ का पहला काम होता था…कूड़े-जूठन को दूर फेंक आना। यह बुरा नहीं था। जब सड़कों की सफाई नहीं हो रही हो तो उन्हें गंदा करना अवैध माना जाना उपयुक्त लग सकता था। फिर इनके द्वारा बच्चों को डराना-धमकाना भी गलत था। वास्तव में इनका व्यवहार बच्चों के प्रति बड़ा

कोमल था। बच्चे अपने दरवाज़ों पर बैठे रहते और इनसे दिन भर बतियाते रहते। वे इनकी वर्दी के बारे में इनसे पूछताछ करते। इनसे टोपियां मांगकर खुद पहनते। इनकी बन्दूकें छूने देने के लिए इनसे विनती करते। इन्हें कश्मीरी सिखाते और पांच या दस पैसा पकड़ाकर इनसे छोले, टाफियां मंगवाते। ये पैसा लेकर बन्द दुकानों के दरवाजे झकझोर डालते और भीतर सहमे बैठे छोले-खोमचे वालों से छोले लेते। सोमनाथ का छोटा बच्चा तो दिन भर ऊपर कमरों में लेफ्ट-राइट करता रहता और भाग-दौड़ से दीवारें हिला देता, दो-दो गिरह फर्श धंसा देता, कंधों पर डंडा लेकर घर के सदस्यों को मारता और अपनी टूटी-फूटी नकली हिन्दी में कहता—"हम छोटा मदि प्रदेश है। तुम किदर जाता। वागो, हम गोली लाएंगा।"

सोमनाथ ने सोचा कि बीच में बोलकर विषयांतर कर दूं। जाने ताव में आकर लाला क्या-क्या बोलता जाए। इसी बीच गुलामदीन ने कहा—"यह (बाहरी पुलिस) जल्द ही वापिस बुलाई जाएगी। अब कश्मीरी पुलिस को ही हर कहीं ड्यूटी पर लगा दिया जाएगा, महाराज!"

सोमनाथ ने विचारा—यह हो सकता है भला? यह होता भी हो तो इस इन्सपेक्टर को कैसे पता लग सकता है? मगर यह एक बड़े आदमी का बेटा है। मेरा असम्भवप्राय तबादला इसी के कारण हो सका। यह मैट्रिक में कभी पास नहीं हुआ लेकिन सीधा इन्सपेक्टर हो गया। यह बिलकुल ठीक हो सकता है।

सहसा उसे अपने कमरे की खिड़कियों, टूटे कांचों का ध्यान आया। वह पथराव के समय खुद घर पर नहीं था। लेकिन दादी कह रही थी कि सबसे पहला पत्थर कश्मीरी पुलिस वालों ने ही मारा था।

पर यह सुनकर उसके पिता का रंग फक क्यों पड़ गया। खोखली जबान से इन्सपेक्टर से कह उठा—"नहीं जी, यह कैसे हो सकता है, इनको मध्य प्रदेश आदि से यहां लाया क्यों गया है···? इन्हें कर्फ्यू हटने से पहले ही लौटाया जाना था तो बुलाए क्यों गए?···और फिर एक कानूनी पहलू भी है इसका···" लाला ने नाक पर से चश्मा उठाया। इसे पोंछने के बहाने जैसे एक लम्बी कानूनी बहस करते-करते थोड़ी देर सुस्ताने लगा हो। मगर सोमनाथ देख रहा था कि उसकी आंखों के तारे चचल हो रहे थे। डर के कारण हर बार ऐसा ही हुआ करता था। उसने अपनी वक्तृता यों पूरी की···"इनको अगर पता चला कि इन्हें अविश्वास के कारण वापिस लिया जा रहा है तो हो सकता है कि ये विद्रोह कर बैठें।"

यह बात लाला ने इस ढंग से कही जैसे वे जरूर विद्रोह कर देते और वह खुद उन सबका ट्रेड यूनियन लीडर था, अफसर को या मालिक को धमका रहा था कि तुम अपना अन्यायी कदम वापिस लेने पर मजबूर किए जाओगे।

इस बात की प्रतिक्रिया गुलामदीन के मुख पर क्या हुई, यह सोमनाथ ने नहीं

देखा। अलबत्ता उसे याद आया, कहीं उसने सुना था कि कश्मीरी और गैर कश्मीरी पुलिस में मतभेद हो गया है। वह कांप उठा। वह इसके परिणामस्वरूप खुद कुचले जाने की बात जानता था। मगर लाला का व्यवहार उसे अवांछित लगता था। उसका मकान दो सड़कों के मिलन बिंदु पर था। यों कहें कि त्रिकोण के एक कोने पर। इससे उसके मकान का एक दरवाजा एक सड़क और पिछला दूसरी सड़क पर खुलता था। मुहल्ले का पहला मकान होने के कारण जुलूस के दिन पथराव का पहला शिकार यही बनाया गया। उससे न कोई खिड़की और न कोई दरवाज़ा साबुत रहा। कर्फ्यू लगा तो सबसे ज्यादा मुश्किल इन्हें ही हुई, आगे भी सड़क और पीछे भी। आगे भी पहरा और पीछे भी। नजरबन्द हो गए थे अपने ही घर में। गलियों वालों के मजे थे। गली-गली से होते हुए सारा शहर घूम फिर आते थे। लेकिन सड़कें खाली थीं—कुत्ते गायब हो गए थे। सोमनाथ ही जानता था कि कभी आवश्यकतावश सड़क को पार करके गली में जाने के लिए कितनी मिन्नतें करनी पड़ती थीं और तब पुलिस वाले पसीज जाते। लाला इन तेरह दिनों में घर से एक बार भी बाहर नहीं निकला। भीतर ही बैठा रहता। अपने कमरे की खिड़कियां बन्द किए। जब कर्फ्यू का तमाशा देखने की तबीयत होती तो चला आता ऊपर सोमनाथ के कमरे में। खिड़की बन्द कर देता, लकड़ी का पुराना बक्स घसीट लाता और उस पर खड़ा होकर रोशनदान की दरार में से तमाशा देखता। फिर खड़े-खड़े ही कमेंट्री चालू कर देता। सोमनाथ इसीलिए लाला के इस समय के वार्तालाप से जलभुन रहा था। भला इन बाहरी पुलिस वालों की तरफ से कह रहा है कि ये बगावत कर बैठेंगे—इनके साथ उसे क्या हमदर्दी है?

लेकिन गुलामदीन आराम से लाला से कह रहा था—"नहीं महाराज, इनकी कुछ नहीं चलेगी। यहां इनकी ऐसा करने की जुर्रत ही नहीं है।" सोमनाथ ने हामी भरी। गुलामदीन कहता जा रहा था—"देखिए, रात को दिन की अपेक्षा ज़्यादा खतरा रहता है। रात को हर कहीं कश्मीरी पुलिस ही ड्यूटी पर लगाई जाती है। जब हमारी नाइट ड्यूटी पूरी हो जाती है तो ये दिन के लिए आ जाते हैं। दिन को भी करते क्या हैं? आप तो इन्हें देखते ही होंगे…ड्यूटी देने के बजाए ये दुकानों के पटड़ों पर बैठे गप्पें हांकते रहते हैं। लेकिन हम तो रात भर जागकर ड्यूटी देते रहते हैं। आपने रात को कहीं दुर्घटना होते सुनी है…?"

सोमनाथ ने जोर से सिर हिलाकर नहीं की। अब कहीं लाला फिर कोई कानूनी पहलू न ढूंढ निकाले। बात टालने के उद्देश्य से गुलामदीन से कह उठा—"भई गुलामदीन, हमारे लिए ज्यादा कठिनाइयां पैदा हुई हैं, क्योंकि आगे-पीछे हर तरफ यही पुलिस दिन को रहती है। परसों से घंटे भर के लिए कर्फ्यू हटाया गया तो राहत मिली। फिर भी समय-असमय किसी चीज की जरूरत आ ही पड़ती है।"

गुलामदीन तुरन्त कह उठा—"अरे, आपने संदेश क्यों नहीं भिजवाया मुझे?"

मैं अपने सिपाही के हाथ सब चीजें भिजवा देता—या बाजार से मंगवा देता। क्यों टीकालाल ?" यों तो गुलामदीन के ये दो सिपाही हर बात पर सिर हिला रहे थे। इस प्रश्न पर टीकालाल नामक एक सिपाही जिसके माथे पर सिंदूर का बड़ा-सा तिलक लगा था, कह उठा—"मैं तो रजब साब के लिए रोज अमीराकदल से मांस ले आता हूं तो इनकी दो और चीजें कौन भारी होंगी।"

टीकालाल की शक्ल सोमनाथ को पहचानी लगी। रजब साहब सड़क पार का सोमनाथ का पड़ोसी था और कर्फ्यू लगने से दो दिन पहले मुहल्ला छोड़कर चला गया था—सोमनाथ और दूसरे मुहल्ले वालों के आश्वासनों और रक्षा की प्रतिज्ञाओं के बावजूद। परसों वे सब लौट आए थे। एक हिन्दू पुलिस वाला इनके घर का काम कर रहा है, यह उसने पहले भी सुना था। गुलामदीन ने उससे शिकायत की—"काहे, मास्टर साब, आप तो हमें भूल ही चुके ? कल रात पूछ ही लिया होता कि रात की ड्यूटी है, आराम तो नहीं करेंगे ? वैसे पिछले तीन-चार दिनों से हम पूरा रतजगा कर रहे हैं। अब तो आदत पड़ने लगी है।"

टीकालाल भभका—इस पर बाद में गुलामदीन की त्योरियां भी चढ़ीं—"दुकानों की पटड़ियों पर ठीक से लेट भी न सके आज की रात। पसलियां अभी भी दुख रही हैं।" मगर सोमनाथ ने सफाई दी—"वाह। मुझे कैसे पता चलता कि आप की ड्यूटी इधर लगी है ? मुझे तो आपकी नौकरी का पूरा पता न था। मुझे मालूम नहीं था तो आपने क्यों नहीं बताया ? खुद द्वार खोलकर चले आते। मकान तो पहले से मालूम था।"

सोमनाथ जानता है कि उसने झूठ बोला है। सड़क पर के सिपाहियों की ड्यूटी बदल जाती, उनके लिए चाय आ जाती या खाना, बिना पास के किसी को धर लिया जाता या कोई भी बातचीत करते—इस सबके साक्षी उसके मां, बाप, पत्नी, दादी रहते क्योंकि दिन भर खिड़कियों पर बैठे रहना और सड़क का तमाशा देखना उनका विनोद बन गया था। कल रात भर इनके मकान के आगे पहली बार कश्मीरी पुलिस आई। ज्यों ही पुलिस वाले ट्रक से उतरे तो कश्मीरी बातचीत सुनाई दी। बच्चे दौड़े-दौड़े दरवाजे पर चले गये और क्षण भर में समाचार लेकर आये। दादी ने ज्यों ही सुना तो उसकी कनपटियां तक लाल हुईं। लाला बिस्तर में घुस पड़ा कि "मुझे नींद आ रही है, आज तो दिन में घण्टा भर भी सो न सका। मुझे कोई जगाए नहीं।" सोमनाथ ने बत्ती बुझाई और खिड़की खोलकर देखा। उसे गुलामदीन की आवाज साफ सुनाई दी। उसे अचम्भा नहीं हुआ बल्कि उसकी अपनी भविष्यवाणी आज सच निकली। स्कूल के दिनों गुलामदीन के रंग-ढंग साफ बता रहे थे कि यह लड़का बड़ा होकर पुलिस वाला बनेगा। वह तो यही देखता रहा था कि जो लड़के पुलिस के लिए समस्या होते हैं, वे ही बड़े होकर सफल पुलिसमैन बनते हैं। मगर उसने होले से खिड़की बन्द कर दी और अन्दर ही

रहा। लेकिन सुबह अनायास उसे सामने पाया तो बुलाना ही पड़ा।

"मैं तो यों ही कह रहा था मास्साब, मैं रात को रजब साहब के यहां सोया। आप नहीं जानते। रजब साहब हमारे वालिद के नज़दीकी दोस्तों में से एक हैं और फिर इनके साथ हमारे रिश्ते राजनीतिक और दलगत भी हैं।"

सोमनाथ ने जब से रजब साहब को देखा, मुहल्ले के प्रेजीडेंट के रूप में ही देखा। काला अक्षर भैंस बराबर। रजब साहब ग्वाला था और प्रेजीडेंटी की बदौलत घर-बार, बेटों-पोतों के फले-फूले और उन्नत परिवार को गुण और संख्या दोनों दृष्टियों से समृद्ध करता जा रहा था। यह और बात है कि दस्तखत करते समय पहले अंतिम अक्षर ब फिर ज और फिर र लिखता। र, ज, ब के बजाय बजर। रजब के बजाय बजर (अर्थात् बड़प्पन)।

टीकालाल और दूसरे सिपाही ने जंभाइयां लेना शुरू ही किया था कि सोमनाथ को सहसा याद आया कि जेब में रुपया है और उसे बाजार से दूध तथा रोटी मंगवानी है। वह खड़ा हो गया पर गुलामदीन ने कहा—"अब हम चलते हैं, मास्टर जी। यहां चाय पीना हमारे लिए शरम की बात है।"

इस पर सोमनाथ ने स्नेह प्रकट करते हुए कहा—"कहां चलोगे, भाई? मैं भी देखता हूं कैसे जाते हो, कैसे चाय पीना नहीं मानते हो? मेरी नज़रों में अभी पट्टन स्कूल के ही लड़के हो।"

गुलामदीन ने उठ खड़े होने की चेष्टा तक न की लेकिन सोमनाथ कमरे से बाहर निकल आया। वह नीचे चला गया। दरवाजे के पास थोड़ी देर खड़ा रहा और जब चक्कर लगाता हुआ एक पुलिस वाला उसे देख गया तो लौटकर उनसे मुस्कराते हुए कह उठा—"काहे पण्डित साहब। खूब बतिया रहे हैं इनसपिट्टर साहब तो।"

उसकी नजरें चंचल थीं और ध्वनि में व्यंग्य था।

"क्या करें भाई! सब करना पड़ता है।" सोमनाथ ने 'छोटा-मोटा' जवाब दिया। सोचा, चलो केवल संकेत में कह दिया। साफ बात नहीं बतायी। करता रहे अर्थ। सिपाही हंसा और आगे बढ़ा पर सोमनाथ ने पुकारा—"ऐ भाई श्यामाचरण, यह एक रुपया है। जरा मेहरबानी करके आधा सेर दूध लाना। बाकी पैसों से कुलचे खरीदना नानवाई से। आपको जरूर कष्ट होगा लेकिन..."

सिपाही ने बात बीच में ही काटकर उसे जवाब दिया। वह व्यंग्य में हंसता जा रहा था। "अच्छा, चाय पिलाई जा रही है मौलाना साहेब को?" फिर सोमनाथ के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही बात पूरी की—"अरे कष्ट काहे का पंडितजी! लाइए।"

उसने सोमनाथ से लोटा और रुपया लिया। दाएं-बाएं नजर दौड़ाई। दूर कोई सड़क पार करने की कोशिश कर रहा था। देखते-देखते बाकी सारे सिपाही

जागृत हुए। डंडों से सड़क पीटते हुए उधर ही सब दौड़ पड़े। सिपाही श्यामाचरण इत्मीनान के साथ पार चला गया और गली के बाजार में खो गया। सोमनाथ ने किवाड़ बंद किए और वहीं इन्तजार करता खड़ा रहा।

पार वाली गली में पूरा बाज़ार था लेकिन गली होने के कारण वहां कर्फ्यू नहीं था। इन्हीं पुलिस वालों की कृपा से सोमनाथ के घर की जरूरतें पूरी हो जाया करती थीं।

''यह लीजिए पण्डित जी!'' श्यामाचरण ने दूध भरा लोटा और कुलचे उसे थमा दिए।

सोमनाथ यथाशीघ्र ऊपर गया। वहां एक नई ही रूदाद सुनी—एक और ही मामला उठ खड़ा हुआ था। दादी बहू से कह रही थी कि जिन बरतनों में नीचे चाय ले जाओगी उन्हें वहीं तोड़ फेंकना। बहू अर्थात सोमनाथ की पत्नी कह रही थी कि, ''किन बरतनों में चाय ले जाऊं? अलमारी की चाभियां ही खो गई हैं। मिल नहीं रहीं, बरतन उसी में हैं।'' मां कह रही थी—''शम्भूनाथ के घर से टी-सेट मंगा लो। वे कैसे जान पायेंगे कि उन में चाय कौन पीता है?'' यह सूझ सोमनाथ की बीवी को जंची और वह सीधी ऊपर चली गई और पिछली खिड़की खोल कर सड़क पार के पड़ोसी शम्भूनाथ की समवयस्क बहू को पुकारा। कर्फ्यू की शान्ति उसकी आवाज़ से भंग हुई। इस असाधारण व्यवहार से उत्सुक मुहल्ले की दूसरी स्त्रियां-बहुएं भी अपनी खिड़कियां खोलकर सुनने लगीं। ''ज़रा अपना टी-सेट देना जी? मेरी अलमारी की चाबियां खो गई हैं। घंटे भर से घर की धूल छान रही हूं, पर वे मिल नहीं रहीं। टी-सेट के विना तो काम चल नहीं सकता। 'इन' का कोई दोस्त आया है—इंस्पेक्टर गुलामदीन। बड़ी पहुंच है इसकी। कह रहा था सरकारी जीप चार पहर द्वार पर खड़ी रखवा लूंगा। जहां आना-जाना हो निश्चित होकर घूमना-फिरना और जरूरत की चीज़ें बाज़ार से मंगवा लेना। अब तुम ही सोचो इसे खासू में तो चाय नहीं न देंगे?''

'गुलामदीन' शब्द पर सोमनाथ की पत्नी ने काफी जोर डाला। कर्फ्यू की खामोशी में यह शब्द चारों ओर प्रतिध्वनित हुआ। वह शायद चाहती थी कि रजब साहब की घर वाली भी सुने लेकिन उनकी खिड़कियां पूर्ववत् बन्द थीं, शायद उन्होंने सुना नहीं था। जिन्होंने सुना उन्होंने जल्दी-जल्दी अपनी-अपनी खिड़कियां बन्द कर दीं और भीतर जा बैठीं। शम्भूनाथ की बहू भी सुनकर अन्दर गई और थोड़ी देर बाद निकलकर बड़ी गम्भीरता से कहा— ''हमारे टी-सेट का कोई भी बरतन साबुत नहीं रहा है। हत्थे ही उखड़ आते हैं इनके और यों बेकार पड़ जाते हैं।'' कहकर उसने सटाक से खिड़की बन्द कर दी।

हक्की-बक्की हुई सोमनाथ की पत्नी ने नीचे आकर सोमनाथ से कहा— ''जाने क्या हुआ इन कलमुंहियों को? अब क्या करें?''

सोमनाथ जान गया था कि क्या हुआ था इनको। उसने भी गुलामदीन शब्द की अनुगूंज सुनी थी। लेकिन पत्नी से बहस करने का समय नहीं था। उसने किसी से कुछ नहीं कहा। जूते पहने और सीधा नीचे चला गया। श्यामाचरण को आते देख उसे बुलवाया और कहा—"भाई श्यामाचरण जी ! बहुत जरूरी काम आ पड़ा है। पार जाना है। उधर की तरफ। जरा मेहरबानी करके मेरे साथ-साथ चलना।"

श्यामाचरण ने हंसते हुए उससे पूछा—"अरे पंडित जी ! कहां जाइएगा ? हम तो चाय का इंतजार कर रहे हैं। आज मौलाना साहब आ गए तो हमारी चाय मारी जाएगी क्या ?"

"नहीं भय्या ! चाय सब के लिए बनी है। आप को भी पिलायेंगे। जरा पार वालों के बरतन लेने थे।"

सिपाही की आड़ में चलते-चलते सोमनाथ ने एक ही उछाल में सड़क पार कर दी। और सीधा रजब साहब के मकान में प्रविष्ट हुआ। ऊपर आकर रजब साहब की पत्नी फ्रेच द्यद को सलाम कहा। फ्रेच ने कुशल पूछी और फिर दोनों ने बार-बार कर्फ्यू को बुरा-भला कहा कि इसकी वजह से दो पड़ोसियों में आना-जाना ही न रहा। अब की सोमनाथ ने एक बार और फ्रेच द्यद के मोहल्ला छोड़कर चले जाने पर नाराजगी प्रकट की। कहा कि आप लोग क्यों चले गए ? हमारे घर रहते। मैं आपका बाल भी बांका न होने देता। फ्रेच ने उत्तर में सोमनाथ से फिर कहा कि हमें काहे की चिंता है। खुदा के बाद हमारे रखवाले हमारे पड़ोसी हैं। समय कुसमय हो गया है। लेकिन यह समय भी नहीं रहेगा। अच्छे दिन भी आयेंगे जब फिर पुरानी-सी माया-ममता होगी। पड़ोसी को चेहरे का दाग बताया गया है जो हर समय सामने रहता है। नाते-रिश्तेदार महीनों-बरसों बाद मिलते हैं और चले जाते हैं पर हमसाया तो रोज मिलता है।…फिर भी देखो, हम चले गए तो घर की रखवाली एक हिन्दू—टीकालाल—के जिम्मे थी।"

जल्दी में होने के कारण सोमनाथ ने मतलब की बात की—मेरा एक दोस्त पुलिस अफसर बन गया है। आज उसकी ड्यूटी इधर ही लगी है। उसे चाय पीने को कहा है मैंने। किस्मत का खेल देखो, हमें अपने बरतन मिल नहीं रहे। आप अपने तीन-चार प्याले दीजिए।"

फ्रेच द्यद ने अपनी बहू से कहा--"जरा अपने चीनी के बरतन निकाल लाना री। सोमनाथ को चाहिए।"

फिर सोमनाथ से कहा—"क्यों, हमारे रोजमर्रा के प्याले क्यों ले जाओगे ? रहम आता है मुझे इन बेचारे सिपाहियों पर। टीकालाल को हमने पचास रुपये दिए और इन दिनों यहीं खाता-पीता रहा।"

फ्रेच की इस बात ने गुलामदीन की बात पर प्रकाश डाला। रजब साहब के साथ उसका दलगत रिश्ता है और उसी ने सिपाही टीकालाल को इनके यहां रहने

की आज्ञा दी है। फ्रेंच कहती जा रही थी—"फिर बेचारे ये बाहर के सिपाही हैं। जाने किस-किस मुल्क के ? यहां बेचारे परवश और कटे हुए। अलग ! हमें इन पर रहम आता है। ये हम लोगों का पकाया खाते तो हम कभी-कभार घूंट भर चाय या कौर भर भात खिलाया ही करते इन्हें।"

इतने में उसकी बहू टी-सेट लेके आ गई। उसे दिखाकर फ्रेंच द्यद ने सोमनाथ से कहा—"ले जाओ। यह नया टी-सेट है हमारा। अभी किसी ने जूठा भी नहीं किया है इसे। लुत्फ आएगा चाय का इन्हें। बेचारों को टूटे-फूटे टीन के भांडे दिए गए हैं। आह ! हमें तो बहुत तरस आता है इनके हाल पर।"

सोमनाथ के होंठों तक बात आ-आ के रह गई। वह फ्रेंच द्यद की गलतफहमी दूर करना चाहता था कि टी-सेट में बाहरी मध्य प्रदेश की पुलिस वालों को चाय नहीं पिलानी थी बल्कि कश्मीरी पुलिस को, गुलामदीन को पिलानी थी। लेकिन ऐसा कहने का अर्थ था एक लम्बी बातचीत का आरम्भ करना। उसे जल्दी थी अतः वह फ्रेंच को सलाम कहके चलता बना।

अब वह ज़रा आश्वस्त होकर गुलामदीन के पास बैठा। थोड़ी देर में चाय आ गई। नया टी-सेट देखकर लाला कुछ परेशान और कुछ हैरान हो गया। उसने चाय नहीं ली। सफाई देते हुए, जो अयाचित थी, बोला—"क्या फर्क है भई ? मैं इस वक्त लिपटन चाय नहीं पीना चाहता। मैं तकरीबन रोज किसी मुसलमान दोस्त के यहां चाय पीता ही हूं—ऐसी कोई बात नहीं।—अभी परसों ही एक दोस्त ने दावत पर बुलाया था। खुतना था उसके लड़के का। गजब की जियाफतें थीं···।"

सोमनाथ चाय का घूंट भर लेता और निगल डालता लेकिन हर बार उसमें कड़वाहट बाहर निकल आती। लाला की बातों से चाय का स्वाद भी कसैला होता लगा। फिर भी वह भगवान को धन्यवाद दे रहा था कि लाला ने इतनी देर गुलामदीन की संगति, सामान्यतया, सही। जाने उसकी गैर हाजिरी में उसने गुलामदीन को खुतने जैसी कितनी और बातें गढ़कर बता दी होंगी···।"

दिन में एक बार लाला जरूर सोमनाथ के कमरे में जाया करता था और यथाक्रम खिड़की बन्द कर देता, लकड़ी का पुराना बक्सा पास घसीट लाता, उस पर खड़ा हो जाता और रोशनदान की दरारों के बीच में से कर्फ्यू में मध्य प्रदेश पुलिस की कारगुजारी देख-देखकर खुश हो लेता और खुशी को कमरे के कोने में दुबके सोमनाथ को सुना-सुनाकर कमेंट्री चालू करके प्रकट करता—"आज सख्ती बरत रहे हैं···बिना पास के किसी को जाने नहीं देते।···अरे ! यह किसे पकड़ लिया ?···अभी-अभी तो गली से बाहर आया था।···समझा रहा है। इसे हाथ पांव हिला-हिलाकर कुछ जतला रहा है। मगर यह मानेगा उसकी।···सच मध्य प्रदेश की पुलिस ही यहां सफल रह सकती है···बड़ी काबिल है यह पुलिस···

मारा उस पर डण्डा। हां, मारो-मारो···ये बाज नहीं आयेंगे वरना···इज़ार की तरफ कुछ दिखा रहा है उसे लेकिन वह तो इसे वापिस गली में भेज के दम लेगा ···उधर से दूसरे पुलिस वाले ने किसी पगड़ी वाले को पकड़ लिया शायद।··· अरे! अरे हां! वही तो है। यह तो कृष्ण जू है। यह भला आज मट्टन से यहां कहां आ गया।···परेशान हो गया होगा बेचारा कर्फ्यू एरिया में प्रवेश करके, शहर में तो···भला यहां किन के यहां जाएगा···कहां जाएगा? इधर ही आ रहा हो तो?···सोमनाथ, देखो कहीं हमारे ही यहां न चला आए। इसका कुछ ठीक नहीं। देखो, तुम खिड़की नहीं खोलना। नीचे जाकर मां से भी कह दो।···क्या बहस हो रही है इसकी सिपाही के साथ भला।···कृष्ण जू ने शायद इसे जनेऊ दिखाया···या फिर जेब से पास निकाल रहा होगा।···नहीं पास कहां से लाएगा। बेचारा। जनेऊ ही दिखा रहा होगा इसे। छोड़ दिया पुलिस ने···छोड़ा, हां, छोड़ दिया अब···नहीं छोड़ता?···कश्मीरी पुलिस होती तो···।

ऐसे अवसरों पर सोमनाथ गुस्से से कांपने लगता और बस्ते पर खड़े होकर रोशनदान की दरार में से झांकते और कमेंट्री करते बाप को वहीं छोड़कर कमरे से आंधी की तरह निकल जाता।

यही लाला इस समय बता रहा था कि कोई फर्क नहीं। सोमनाथ चुप रहा। गुलामदीन भी चुपचाप पीता रहा। टीकालाल और दूसरा सिपाही रोटियों पर हाथ चला रहे थे। चुप्पी भारी होने लगी तो उसे तोड़ने के लिए सोमनाथ कह उठा—"देखो, भाई गुलामदीन! क्या मालूम कर्फ्यू और कितनी देर के लिए रहे। हमें बड़ी मुश्किल होती है। मकान ही ऐसी जगह पर है कि सामने भी और पीछे भी सड़क है। बीसियों चीजों की जरूरत पड़ती है। लोगों को देखता हूं जोक-दर-जोक खरीदारी करते हुए।"

गुलामदीन ने पूछा—"पास नहीं बनवाया आपने?"

"नहीं भाई, ऐसा कोई अफसर हमारा परिचित नहीं जो पास दिला सकता। कोई अपना रिश्तेदार भी नहीं।" "तो यह कौन बड़ी बात है।" गुलामदीन ने टीकालाल से कहा—"कल मास्टर जी के लिए पास लेते आना" फिर सोमनाथ से कहने लगा—"आप को पास लेकर क्या लेना है। शाम को हमारी ऐलानगाड़ी घूमती है। उसी में बैठकर आप अमीराकदल चले जायें। वहां कर्फ्यू नहीं है। करें जितनी खरीददारी करना चाहें। लौटकर उसी से आ जाया करें। पुलिस की गाड़ी को कौन रोकता है?"

लाला यह सुनकर बड़ा खुश दिखाई दिया। मगर सोमनाथ जानता था कि उसने यह बात केवल लाला की ऊटपटांग बातों के फलस्वरूप हुई चुप्पी को तोड़ने के उद्देश्य से छेड़ी थी वरना आज महीने की उन्नीस तारीख है और उसकी जेब में केवल तीस पैसे हैं।

"देखो सोमनाथ, यही तो मैं तुम से कह रहा था। भगवान ने यही तो फर्क कर दिया है अपने और पराये में। अभी गुलामदीन साहब को ड्यूटी पर लगे एक ही दिन हुआ और हमें कितनी सुविधा होने लगी है। ये बाहरी पुलिस वाले तो जालिम हैं जालिम। जरा भी दया नहीं होती इनमें।"

सोमनाथ को चाय के इस घूंट में भी कसैलापन लगा। निगलने के बजाए उसने उसे खिड़की से फेंक दिया।

गुलामदीन ने कहा—"इसकी बात ही न करें आप। बाहर वालों की बात ही से मुझे घिन आती है। यहां के ढंग क्या जानें ! इनके यहां रहने से ही दंगों को हवा लगती है। हम इन्हें कैसे बर्दाश्त करते हैं यह आप से क्या कहें।...

खैर, इनको शीघ्र ही हाजिर लाइन ड्यूटी किया जाएगा। हमने इनको कई बार कुछ विशिष्ट घरों से भात लेते देखा है, चाय मांगते देखा है। मगर आप ही सोचिये...एक घर से मांगना और 'दूसरे' पर जुल्म करना, अकारण तंग करना...? सब से बढ़कर तो इनसे हमारे जवानों के अनुशासन पर बुरा असर पड़ता है...।"

सोमनाथ ने आधा पिया कप नीचे रख दिया और उठ खड़ा हुआ। वह अनायास पसीना-पसीना होने लगा। आंगन में से बातचीत की आवाज़ आ रही थी जो वह साफ सुन रहा था। उसे मालूम था, यह मध्य प्रदेश की पुलिस है जिसे उसकी मां चाय पिला रही है।

शोर में से एक बात उसने साफ सुनी। सिपाही श्यामाचरण उसकी मां से कह रहा था—"पंडित जी कहां हैं, माता जी ! खूब कुलचा मंगा लिया। जरा हम भी स्वाद लेते कश्मीरी कुलचा का।"

किसी काम का बहाना करके वह कमरे से बाहर निकल गया...।

(हमारा साहित्य १९७४ से)

दर्द की मछली

□ ओम गोस्वामी

हल्की-सी बूंदाबांदी हुई थी। सड़क का काला धूमिल रंग निखर आया था। दल-दल से निकला, मानो अजगर लेटा था, काला-कलूटा, कीचड़-सना। फिसलन भरे गोले से हटकर उस तंग और बलखाती गली की ओर मुड़ते ही बदबू का भभका नासापुटों में घुस गया था। बदबू, जिसका सम्बन्ध गलियों के जालवाली बस्ती में रहने वाले हर व्यक्ति से था। अजीब जाल था यह। प्रत्येक व्यक्ति के तालू में कांटा चुभा हुआ था और वह छटपटा रहा था। पर इससे भी अजीब बात यह है कि उनमें मुक्ति की चाह न थी। तंग गलियों से और-और तंग गलियां निकलतीं और सिकुड़ते-सिकुड़ते वे धागे की तरह बारीक हो आतीं। इन धागों के सिरों पर विवश आदमी टंगे हुए थे।

मानस-चक्षुओं के सामने सड़क के मध्य चिथी हुई वह जिंदा लोथ घूमने लगी है, जिसके गिर्द राहगीरों का घेरा था।

···लहू की खाड़ी-सी बनी हुई थी। और वह दुर्भाग्यग्रस्त जहाज की तरह इसमें डूब रहा था। जिज्ञासावश जब मैं घेरे में दाखिल हुआ था, मेरे ख्वाब-ख्यालों में भी यह बात नहीं थी कि हादसे का शिकार वह आदमी होगा जो मेरा सुपरिचित है—आज से नहीं वर्षों से।

दिन-दहाड़े फटने से उसके मुंह-सिर पर टिंक्चर आयोडिन के फाहे चिपके रहते। हरे जख्मों के पीले-पीले दाग थे और उनसे कपास के सफेद रेशे—बिजली की तारों—से लटकते मरे हुए चमगादड़ों की तरह झूलते रहते। फिल्मी खल-नायकों-सा खतरनाक चेहरा था। अनजान व्यक्ति साहब के कमरे में दाखिल होने से पहले उसका चेहरा देखकर दहशतजदा हो जाता। बेखयाली में सांप की केंचुल दिखायी पड़ जाने जैसा भय।

मुझे उससे अपनत्व भरी सहानुभूति होने लगती। पर इसे मैंने कभी प्रकट न होने दिया, क्योंकि मैं नहीं चाहता दो सहानुभूति-परक शब्द निकलते ही किसी की याचक आंखें मेरी जेबों की तलाशी लेने लगें। यह मेरी अपनी मजबूरी थी। मैं सोचा करता नौकरी छूटने पर इसका क्या होगा? उस वक्त यह नौशादरी

भट्ठी को छोड़कर स्पिरिट और बेहोशी के कैपसूलों के सस्ते नशों पर उतर आयेगा। तब यह पूरा-पूरा दिन बेहोशी के कुएं में बेजान लकड़ी की तरह पड़ा रहेगा। शारीरिक हरकतें रुक जाना चाहेंगी। इतना नाकारा, एक मानव अस्तित्व ! सिर से पैरों तक ठंडे पसीने में डूबा हुआ...

बड़े साहब 'टेबुल बेल' पर हाथ रखते हैं। एक गुंजायमान यांत्रिक चीत्कार। धर्मू हड़बड़ाहट में पैर साधता अंदर आता है। दहशत भरा प्रश्न-अंकित चेहरा हुक्म लेकर, बाहर से पानी ले जाने लगता है। गिलास को यत्न से पकड़ने पर भी ऊपर रखी प्लेट ठल...ठल ध्वनि करती कांप रही है। मैं हस्ताक्षर करवाने लायी फाइलें आगे सरकाता हूं। साहब ने आंखें धर्मू पर गड़ा रखी हैं। टकटकी बंधी है। इस दुरूह पुस्तक को पढ़ना चाहता है साहब। धर्मू जिस्म तनाकर खड़ा होने का प्रयास करता है, माथे पर पसीने के छोटे-छोटे कतरे उग आते हैं। नाचती प्लेट की ध्वनि बढ़ती है। ढीली वर्दी के अंदर शरीर का कांपना छिपता नहीं। साहब एक आंख दबाकर गिलास थाम लेते हैं...समज गिया साब। धर्मू सलाम के लिए हाथ ऊपर उठाता है...जो नाक की चोंच से जा लगता है... साहब के समतल माथे पर उभरी ऊबड़-खाबड़ लकीरें धर्मू को बरज देती हैं। चेहरे की भंगिमाओं की गुफ्तगू अधूरे प्रसंगों पर असमंजस का कोहरा जमा देती है। नजर चुराता धर्मू कमरे से बाहर हो गया है। साहब उसके कदमों की आखिरी आहट तक दरवाजे पर हिलते परदे की ओर देखते रहते हैं। द्वन्द्वयुक्त एकाग्रता के टूटते ही साहब मुझे आंखों से तौलते हैं...."सफाई यह देता है कि मुझे हाथ कांपने की बीमारी है। डॉक्टर ने पौवा पीने की सिफारिश कर रखी है। जानता हूं यह सिर्फ बहानेबाजी है। पर इसलिए कुछ नहीं कहता कि समझाने पर भी शराब से कोताही तो करनी नहीं इसे। ऐसे लोग बेवक्त की मौत मरते हैं। एक्शन लूं तो यह चार रोज पहले ही मर जायेगा। उस हालत में सजा इसकी औरत और बच्चों को मिलेगी।" दिलचस्पी न होते हुए भी साहब के उदार भावों की कद्रदानी में मैं अपनी गरदन हिलाता रहा। अनमांगे स्पष्टीकरण से जाहिर हो चला था कि इशारों और अधूरे वाक्यों में कोई महत्त्वपूर्ण संदर्भ छिपा पड़ा था।

बेहोश और लहू में तरबतर शरीर के चौगिर्द खड़े मेले में प्रत्येक चेहरा 'साहब' से मिलने-जुलने लगा है। साहब अपनी भविष्यवाणी के पूरा उतरने पर एक कसैली मुसकान भर रहे हैं...मैं न कहता था।

—अरे ! यह आदमी घड़ी भर पहले रसमंजरी पर एक लखपति से झगड़ रहा था। एक अपरिचित चेहरे ने गिरे हुए जिस्म को तीखी नजरों से देखते हुए कहा।

—किस लखपति से ?

—घसीटाराम शाह से।

—उसी की कार तो गिराकर नहीं चली गयी ?

—सुना है कोई ट्रक-ड्राइवर था।

—घसीटाराम से झगड़ा किस बात पर हुआ ?

—उसने व्हिस्की और अनन्नास-रस के डिब्बे खरीदे थे। पैसे चुकाने लगा कि इसने फुर्ती से सौ का नोट झपट लिया। ऊपर से सीनाजोरी देखो कि डटकर खड़ा हो गया। एक इंच भी हिला नहीं।

—भागता कैसे ? पी रखी थी।

—कहने लगा तुम लोग कारों में घूमते हो। शराब में फलों का रस मिलाकर पीते हो, चलो, देखो, मेरे घर में बच्चे भूखे मर रहे हैं।

— अब ऐसा ही हुआ करेगा, भाई ! जिन्दा रहने के लिए हक छीनकर लेना होगा। एक दाढ़ी वाले व्यक्ति ने गहरी शिनाख्त करते हुए कहा—"सांसें चल रही हैं, लेकिन बचेगा नहीं।"

—कोई आदमी इसे अस्पताल क्यों नहीं पहुंचाता ? मैंने उनकी मनुष्यता को लानत भेजते हुए पूछा—अगर आप लोग इस हादसे का शिकार हुए होते ?···

दो व्यक्तियों ने तुरन्त अपनी जाग्रत चेतना को उछाला। एक ने कहा—"जो थाने में खबर पहुंचाने जायेगा, उसी को वे बदबूदार कोठरी के एक कोने में बिठा देंगे।" दूसरे ने मनुष्यता की सतह से पूछा—"आप स्वयं ही क्यों नहीं यह नेक काम करते ?" पहले वाला कह रहा था—"कौन फालतू मुसीबतें गले लगाये !" आवाज में जो तलखी है, वह अनुभव के बाद ही आती है—"इसे अस्पताल पहुंचाने जाओगे तो भी पुलिस आपको ही बांधेगी। अपने बीस काम छोड़कर पड़े रहो थाने और कचहरी के चक्कर में···कौन भड़भूजा आपको अक्लमन्द कहेगा···" इस बात पर एकाएक बहुत-से लोग मजमें से खिसकने लगे। मैं भी धर्मू से परे जाने लगा तो मन को तसल्ली दी कि जिस धर्मू के प्रति तेरे परिचय की जवाबदारी थी, वह छुटपन वाला क्लास-मॉनीटर था—यह वाला शराब पर न्योछावर व्यक्ति नहीं। जब भी मन किसी कटु सत्य का सामना नहीं कर पाता तब बुद्धि कुछ बेपर की गढ़कर प्रत्येक कर्त्तव्य से सुर्खरू हो लेती है। परिचय कच्चे सूत की तरह छोटी-छोटी बातों पर टूटता रहता है।

धर्मू कभी बीते दिनों के बाद की याद कराता तो मेरा सिर शर्म से जमीन में गड़ने लगता। ऐसे व्यक्ति का हम-जमाती होना लोगों के लिए क्या मायने रखेगा, यह सोचकर ही तमाम कुढ़न मेरे आस-पास सिमट आती। उन दिनों धर्मू स्कूल का सबसे लड़ाकू लड़का था। नेता की तस्वीर मात्र से प्रभावित होने वाले मुझ जैसे लड़के वैसे ही उससे खौफजदा रहते।

वह मेरे बचपन की स्मृतियों में रावण की तरह खलनायक बन बैठा है। मेरे संस्कार उसके अस्तित्व को अनदेखा नहीं कर पाते। लाख नकारों के बाद भी भावनाएं कहीं अवांछित व्यक्ति से अवश्य जुड़ी रहती हैं।

यदि साहब जैसे कारोबारी व्यक्ति को उसके बीवी-बच्चों पर रहम आ सकता है तो क्या मैं ही इतना गया-गुजरा हूं कि उसके घर वालों को इसकी खबर तक न दूं। वहां कानून के यांत्रिक जबड़ों का भय नहीं। यही सोचकर मैं उसके घर की ओर चला था।

उससे संबद्ध प्रत्येक बात को मैं अंधेरे में पड़ा रहने देना चाहता हूं ताकि उस हौलनाक पसमंजर पर सिर तोड़ती स्मृतियों की लहरें तकलीफ का कारण न बनें। लेकिन सर्पिल गली के उस मोड़ पर बदबू की लहर पर सवार वह पुनः मेरे अंग-संग चला आता है। दफ्तर में भी जब कभी खाली वक्त में वह मेरे पास आता तो ऐसी ही दुर्गंध उसके अस्तित्व से हवा में झरने लगती।

—पता नहीं तू किस बदबू की बात करता है। यहां इतनी बड़ी बस्ती के निवासियों में किसी को भी मैंने बदबू की बात करते नहीं सुना! वह कहता।

मेरे मस्तिष्क में कील-सी धंसने लगी है। जैसे-जैसे आगे बढ़ो, चुभन असह्य होती जाती है।

—एक वह भी दिन थे, ये भी दिन हैं···वह मेरे साथ बैठकर अपने स्कूल के दिनों की याद ताजा करना चाहता। पर मैं अपनी ही चिंता में खोया हुआ कहता—यदि कभी इस शहर में प्लेग पड़ी तो सबसे पहले इस बस्ती से उसकी शुरुआत होगी···

जब वह नशे में धुत् होकर दफ्तर में ही ढह गया था, तब पहली दफा उसके घर आया था। मजदूरों ने स्ट्रेचर उठा रखा था। दूसरा चपरासी घर का रास्ता दिखाता आगे-आगे चल रहा था। उस दिन गली में इतनी दुर्गंध महसूस नहीं हुई थी, सम्भवतः वह धर्मू के अन्दर से फूटती, सड़ी हुई बदबू के नीचे दब गयी थी।

आज नालियों में कूड़ा, कीचड़ तीखी दुर्गंध छोड़ रहा है। डीजल की तरह गाढ़े पानी में बुलबुले फटते हैं—जैसे सड़े अंडों की बदबू हवा में घुल जाती है। उस स्थान पर जहां नाली के किनारों के पत्थर टूट गये हैं···और जहां कच्ची नाली शुरू होती है—गंदे पानी का ठहराव तालाब की शक्ल अख्तियार करने लगा है। वहां सफेद बतखें तैर रही हैं। छोकरे-छोकरियां उनके पीछे छपाक्-छपाक् करते दौड़ रहे हैं। बनने से लेकर आज तक उनकी कमीजें धोई नहीं गयीं। बनाते वक्त उन्हें कफ, काज या बटन भी नहीं लगाये। जिस्म पर जहां कहीं कीचड़ सूखता है, वहीं राख की रंगत उभर आती है। छोटे-छोटे बच्चे पिंडलियां,

बगलें, शिश्न, बांहें खुजलाये जा रहे हैं। चमड़ी से बुरादे-सा कुछ उतरता है। दुर्गंधयुक्त दलदल को अनेक छोटे-छोटे पैर मथ रहे हैं। किसी-किसी के हाथ में गोल की हुई रोटी का टुकड़ा है। इनमें धर्मू के बच्चे भी होंगे, सोचता हूं, अब वे दलदल से निकलकर असमय रस्सी कंधे पर धरे मजदूरी के लिए सड़कों पर दरबदर होंगे। मेरी सूचना इनके भाग्य की पुस्तक ही पलट देगी।

चाहता हूं इन्हें हाईजीन की बिना पर रोकूं। क्या मैं जो कुछ कहूंगा, वह इनकी समझ में आ जायेगा? अब नियति को बदलने का कौन-सा साधन है मेरे पास? मैं स्वयं क्षुद्र हूं।

कीचड़ की मछलियों को जिन्दगी भर अपनी छोटी-छोटी वेदनाओं के संग सुविधाभोगी लोगों के दस्तरखानों पर कांटों से बिंधना है। इससे छुटकारा नहीं। पर क्यों? जरूर कहीं गड़बड़ है। जाल में फंसी मछलियों के लिए मेरे पास मुक्ति की कोई युक्ति नहीं। फिर भी मैं चला आया हूं···हादसे की खबर देने।

बिना संदर्भ की गंभीरता को समझे मैं कितनी मनहूस मुहिम पर चढ़ आया हूं। पर इतनी दूर आकर दिमाग पर वही बोझ लादे वापस लौटना और भी दुःसाध्य होगा। सोचता हूं नाली में खेल रहे लड़के इधर देखें तो हादसे की खबर देकर पीछे लौट जाऊं। थोड़ा आगे कुछ बड़े लड़के नाली में से ढूंढकर कुछ निकाल रहे हैं। गदगी के कीड़ों के अलावा और क्या होगा यहां? उनकी तत्परता जाने किस चीज के लिए है?

पास आने पर देखता हूं ठोस-ठोस वस्तुएं निकालकर बाहर रख रहे हैं। कंकड़, जंग लगी कीलें, तारें, कांच की किरचें, बिल्लौरें, चमड़े, तांबे और पीतल के टुकड़े। सभी ढेरियां अलग पड़ी हैं। सोचता हूं इन्हें बेखटके खबर दी जा सकती है। मेरे सफेद सुथरे कपड़े भी लड़कों का ध्यान अपनी ओर नहीं खींच पा रहे। प्रसंग से जुड़ने के लिए कुछ देर मैं हैरानी से उनके माहौल में खड़ा रहता हूं। फिर पूछता हूं—"कुछ खो गया है?"

उनकी व्यंग्यमयी नजरों की ताब लाना कठिन हो जाता है—"हां, मेहरबान! चांदी का चम्मच था।"

"कहां गिरा था?" सोचता हूं यदि यहां होता तो जरूर निकल आया होता।

"यह राज क्यों पूछ रहे हो? तुम्हारा इरादा भी निकालने का तो नहीं?" बड़े गुस्ताख लड़के हैं। शायद इस गंदगी के टब में रहकर इनका चिंतन भी दूषित हो चला है। बिजली जैसे एक ही झटके में दोबारा हाथ न लगाने के लिए खबरदार कर दे, बेवजह अपमानित होकर मैं वहां से खिसक आता हूं। बुद्धि तर्क रखती है—यह इनका नहीं अशिक्षा का दोष है। लेकिन मन कहता है—लंगड़ी दलीलें न दिया कर। पढ़े-लिखे लड़के हुल्लड़ करें तो वह शिक्षा के कारण। अपढ़

करें तो अशिक्षा···

अब स्वयं खबर पहुंचाने के अतिरिक्त और चारा नहीं।

मैं चिर परिचित कोठरी के भीतर चला आया हूं। धर्मू के पिता पहचाने नहीं जाते। बड़े दुबले हो गये हैं। जिस्म से सिकड़ी-सी उतर रही है। मुझे वह निरीह आंखों से देखते हैं। अपरिचित को अपने छप्पर के नीचे देखकर उनका कुछ न बोलना मुझे खलने लगता है। स्थिर आंखों का खालीपन मानो सारे कमरे में व्याप गया है। बात शुरू कैसे की जाये? उम्र की अंतिम सीढ़ी पर बैठे व्यक्ति को कैसे कहा जाये कि उसका बेटा गाड़ी के नीचे आ गया था···?

मुझे तसल्ली होती है कि इस अंधियारे कमरे में वह दुर्घटना की खबर सुनाने वाले की सूरत अच्छी तरह न देख सकेगा।

पता नहीं क्योंकर दिन दोपहरी, इस कुटिया में अंधियारा पसरा पड़ा है। आंखें अंधेरे से अभ्यस्त होने के आयाम तलाशती घूमती रहती हैं। जैसे एक अतल कुआं है, जहां कुछ सुझायी नहीं देता।

सहसा बाहर से आवाज़ आयी—"बाबा ! कोई चार किलो शीशियां और दो किलो कीलें हो गई हैं। डेढ़ रुपये की तार हो गयी है। तांबे की तारों की मैंने खील ले ली थी खोमचे वाले से। मैं जाकर बेच आऊं?" बूढ़ा उत्तर नहीं देता, पर मेरा जेहन बाहर की आवाज़ को तुरन्त पहचान लेता है। वही कड़वी तीखी आवाज़ वाला लड़का, जिसने बिना उम्र या रुतबे का लिहाज किये क्षण भर में तमाम औपचारिकताओं का फासला बराबर कर डाला था।

"बोल नहीं रहे। नशा खत्म हो गया है क्या?" लड़का अन्दर आकर खिड़की खोल देता है। बूढ़ा रोशनी की ओर देखता है—जैसे युगों की बैरिन हो। रोशनी की कुछ किरणें दीवार पर टंगी ग्रुप फोटो पर पड़ रही हैं। पांचवें दरजे की यादगार है यह। वर्षों से जमी धूल ने चेहरों को धुंधला कर डाला है। लगता है कुछ चेहरों से धर्मू बराबर धूल हटाता रहा है। तभी उनकी पहचान कठिन नहीं। नीचे वाली पंक्ति में मैं और ऊपर वाली में धर्मू खड़ा है। मेरी आंखों के सामने वो मंजर चला आता है जब स्कूल में कोई नेता भाषण देने आये थे। भाषण के बाद उन्होंने धर्मू को खादी भंडार के कपड़ों का जोड़ा और गांधी टोपी दी थी। यह भी ताकीद की थी कि सभी लड़कों को उससे बराबरी का व्यवहार करना चाहिए। उस समय मन में आया था कहूं—आप ही इससे कहिए कि दूसरों के साथ मार-पीट न किया करे।

उनके जाने के बाद फारम मास्टर ने समझाया था, हरिजनों का सप्ताह मनाया जा रहा है। धर्मू हरिजन है, यह सुनकर उसमें मेरी श्रद्धा-सी बन गयी थी। मैंने उससे पूछा था, "तू हरिजन है—यह कितनी अच्छी बात है, फिर तू

दूसरे लड़कों पर रौब क्यों डाला करता है।" उत्तर में उसने कसकर तमाचा मेरे गाल पर जड़ दिया था। बोला—"बड़े हिन्दू के बच्चे! एक बार हरिजन कहा है दोबारा कहा तो गटर में डाल आऊंगा।"

मैं रोने को हो आया था। सोचता रहा, मुझसे क्या भूल हुई है। हरिजन मतलब परमात्मा का जन—पर इसे उसने गाली के समतुल्य क्यों समझा है। मास्टरजी ने उस सप्ताह के लिए धर्मू को क्लास मॉनीटर नियुक्त किया था। फिर वह पूरा वर्ष जबरी मॉनीटर बना रहा। वही धर्मू खादी भंडार के नये कपड़े पहनकर नाली में उतर गया है। लकड़ी का एक अनघड़ तोदा किनारे से फिसलता-फिसलता उस पर आ पड़ा है। लकड़ी भारी-भरकम वाहन में बदल गयी है। मौत के पास कारण नहीं होता, बहाना होता है—बड़ा लचर बहाना। धर्मू अचेत पड़ा है। फटी रगों से लहू नहीं काला कीचड़ बह रहा है। मैं कांप उठता हूं। स्वप्न-तंद्रा टूटती है। हर चीज अपनी जगह ठहरी हुई है।

—ले आना रत्ती भर। काफी देर बाद बूढ़ा बोलता है। स्वर ऐसे है जैसे जीभ को लकवा मार गया हो। उसे कंपकंपी छूटी हुई है।

—बड़े चालाक! चार किलो शीशियां और दो किलो कील। सवा दो रुपये नहीं बने। एक स्त्रैण स्वर कुटिया के साथ वाले दरवाजे से निकला। लड़के ने भौंचक हो मेरी ओर देखा। वह थोड़ा-सा झुकता है। फिर दहलीज के पास चला जाता है—हां भराविये। पर मांझे वाला सवा किलो का एक किलो तौल लेता है। मैं क्या करूं। लुहार भी कुछ पल्ले नहीं डालता। पत्तियों के अच्छे दाम मिल जाते थे पर आजकल उन्हें कोई कूड़े में फेंकता ही नहीं।

—चुप करके नमक आटा ले आना नासपिटे! बहाने बड़े बनाता है। रात मुझसे मोहन भोग न मांगना।

—और बाबे की अफीम।

—मरे! ऐसा करना ज्यादा ले आना। सभी फांक लेंगे?

—मैं जरा देर से आ पाऊंगा। नयी फिल्म लगी है। चार टिकटें निकल गयीं तो दाल की जुगाड़ हो जायेगी।

वो चला जाता है। पर वह बड़बड़ाती रहती है—मेरे भाग फूट गये इनसे माथा लगाकर। घड़ी भर में बन्दर सेना रोटी के लिए चिल्लायेगी। अन्दर आटे की एक छटांक नहीं। वह शराबी जाने किस भट्ठी पर ओक लगाये बैठा होगा। नौकरी छूटेगी तो मुझे साब के सामने थाली बनाकर हाजिर करेगा··· बेईमान मर्द···

—रांड! अभी तेरा वो यार गया कि नहीं? बूढ़ा जैसे किसी यंत्र में कसा जा कर बोल रहा हो।

—तेरे हाथ जोड़ती हूं बूढ़े। धीरे बोल, सैनटरी साब ने सुन लिया तो नाराज

होगा।

—शक्ल न दिखाया करे। कह दे भैन के यार से। हलवाइयों, ठेलेवालों से मुफ्तखोरी करके खाते हैं और मांस भी बिना दाम नोंचने चले आते हैं—हराम-खोर। बाप का सरमाया समझ रखा है सालों ने···बूढ़ा हांफता है। वह और कितना बोल पायेगा इसका अनुमान करता मैं कोठरी के गुम कोनों में किसी अन्य वजूद की तलाश करता हूं।

—कौन मुफ्तवरी करता है? पंदरा-पंदरा रोज डियूटी पर न जाओ तो नौकरी क्या बहाल रहेगी? इलाके की पूरी गंदगी दूसरे लोगों से उठवाता है। किसके लिए? क्या मेरे बाप के टके देने हैं उसने। महीने में एक बार खुस कर देती हूं···उसका भी पीठ-दर्द हट जाता है। क्या बुरा होता है।

—जबान दराजी न कर रांड···बूढ़ा रोशनी की ओर देख चिल्लाता है पर आवाज़ कच्चे सूत की तरह अधबीच ही टूट जाती है। गुस्से में उसके दांत कट-कटाने लगते हैं।

साथ की खोली से एक मर्दाना आवाज़ गूंजती है—नसीबो, मैं जा रहा हूं। सुबह झाड़ू लगाओगी तो हाजरी लगेगी। कदमों की चाप उठती है और परे-परे जाने लगती है···

—सुन तो सैनटरी बाबू! वह कहती है···कांपता हुआ सन्नाटा···मोटर साइकल स्टार्ट होती है—"तू जहां कहेगा, मैं आ जाऊंगी बाबू।" अब गुस्सा थूक दे···मोटर साइकल का फटा हुआ शोर निरंतर दूर-दूर होने लगा है।

मेरी मौजूदगी से बेखबर बूढ़ा अपने आप में कुछ भुनभुनाये जा रहा है। अचानक वह दहलीज के निकट चली आती है। देखता हूं, निचुड़ा हुआ निःसत्व चेहरा, जिस पर केवल एक जोड़ी आंखों की सत्ता निःशेष है···

आंखें ··प्रश्न···निमंत्रण।

—इन बाबूजी से निपट ले। बूढ़ा बड़े कारोबारी लहजे में नसीबो को हुक्म देता है।

मैं कहना चाहता हूं कुछ। लेकिन दहलीज के परे, नसीबो के पीछे उभरे चेहरे को देखकर चौंक उठता हूं। वह भी झेंप जाता है। निरर्थक मुस्कान उसके होंठों पर उतर आयी है।—क्या आपको भी पीठ-दर्द का रोग लग गया मिस्टर? वह कहता है— मुझे तो खोखला कर दिया रेंगते दर्द ने।

नसीबो पीछे देखती है। अब मेरा खबर देना जरूरी हो गया है —"धर्मू का एक्सिडेंट हो गया है।" बूढ़े पर असर देखने के लिए मैं शब्दों को तोड़-तोड़कर बोलता हूं। बूढ़ा निडोल आंखों से गोबर लिपी धरती देखे जा रहा है। बड़ी देर तक मैं उसके कुछ बोलने की प्रतीक्षा में रहता हूं। पर वह अझिप आंखों को जमीन पर गड़ाये रखता है। मच्छर कब से मेरे कानों के गिर्द रिट्रीट-वादन कर रहे हैं।

अब और बैठना कठिन हो चला है। बूढ़े के किसी दुविधा से बाहर आने तक की प्रतीक्षा है। एक मच्छर बूढ़े की पांडुरोग का दिखावा करती नग्न बांह पर आ बैठा है। मैं इंतजार करता हूं कब वह इस लहू के प्यासे को हाथ मार कर खत्म करेगा। पर वह मच्छर का पेट लहू से फूलते देखता रहता है। मच्छर उड़ गया है—एक कतरा खून लेकर। मेरी हथेलियों मे तिलमिलाहट होने लगी है। अब तक धर्मू के शरीर से खून की आखिरी बूंद भी बहकर सड़क के होंठों पर पपड़ी बन जम चुकी होगी।

बूढ़े का शरीर डगडग कांप रहा है। सीलन भरी गुदड़ी उसने लपेट ली है। शीत से जैसे ठिठुर रहा हो। उसके दांत बज रहे हैं। मुंह से सी-सी निकल रही है। पर मुझसे कमरे की उमस अब सही नहीं जा रही। बड़ी गर्मी है। उसके होंठों की कोरों में फेन इकट्ठी होने लगी है।

—रांड, जा अफीम ला दे। वो ब्लैकिया जाने कब वापिस मरेगा। नसीबो उत्तर नहीं देती। बूढ़ा रोने लगता है···रोता है···दहाड़ें मारता है। उत्तर आने तक काफी अन्तराल पसर चुका है।

—एक वो गाड़ी के नीचे आ मरा···अब तू मरे या मैं मर जाऊं। बच्चों की तरह रो रहा है···

—घर में रोटी नहीं है···बता तेरे नसे के लिए रुपये कहां से लाऊं···

—रांड, जल्दी कर, निपट ले उन सेठजी से।

मुझे लगता है एक पल भी और मैं यहां ठहरा तो कोठरी की कांपती दीवारें मुझ पर गिर पड़ेंगी। मैं तेजी से बाहर निकल आता हूं। नसीबो उस व्यक्ति के साथ खोली के भीतर चली जाती है।

—उस दिन आया था, उस नामुराद को स्ट्रेचर पर डलवा कर। आज उसकी मौत की खबर ही ले आया। नसीबो का स्वर मेरा पीछा करता है।

इस बस्ती से जितनी जल्दी हो मैं बाहर चला जाना चाहता हूं। पर दर्द से बिंधी मछलियों की मौन वेदना मेरे हर कदम पर अंकुश लगा रही है।

(सारिका : फरवरी, १९७५)

कालक्षयी

□ छत्रपाल

भीड़ के खंडित-वृत्त में डुगडुगी लिये चक्कर काटते हुए उसे आज भी लगता है—तने रस्से पर अपनी चंदन-देह का सन्तुलन बनाए मालतु दोनों हाथों से रंगीन रिबन के इन्द्रधनुष बिखेरती उसकी तरफ आ रही है।

हालांकि काल-मूषक उसकी आयु का बड़ा भाग कुतरकर ले गया है, किन्तु वह अपने किसी भी शो में मालतु की अनुपस्थिति भूल नहीं पाता।

वह बहुत बूढ़ा है—कगार पर अटके दरख्त की तरह। जाने कब हवा-पानी का कोई जोरदार थपेड़ा पड़े और काली नदी में उसका अस्तित्व विलीन हो जाए।

अपने विषय में वह बड़ी बेरहमी से सोचता है। 'नहीं, सिखाया किसी ने नहीं, अपने आप आ गया है।'

सत्यानाश हो सरवन मिसिर का जो उसके जीवन में खलनायक बनकर आया और उसे गलत धंधे में डालकर उम्र भर के लिए तमाशा बनाकर छोड़ गया। यदि उस बुढ़ऊ ने मालतु का हाथ दे दिया होता तो शायद स्थिति कुछ और होती। वह दिशाभ्रष्ट रास्ते पर पड़कर जस का तस न रहता। इस आयु में अपने आपको यूं नीलामी पर न चढ़ाना पड़ता।

वह मजमेबाज है। लोगों को तमाशा दिखाता है। यही उसका पेशा है।

उसने एक बार पुन: डुगडुगी बजाई और भीड़ की तरफ देखते हुए गले की नसें फुलाता हुआ बोला—"साहबान, अब आप दिलों पर हाथ रख लीजिए। पैर जमाकर अपने-अपने स्थान पर खड़े हो जाइए। मैं अपनी ज़िन्दगी की सर्वश्रेष्ठ आइटम पेश कर रहा हूं…।"

वह तनिक रुका। लोगों के चेहरों पर अपेक्षित प्रभाव देखकर उसे जैसे थोड़ी पुलक हुई। उत्साह से डुगडुगी बजाता भीड़ के दायरे में उपग्रह की तरह चक्कर काटने लगा।

पीछे खड़े कुछ दर्शकों की आंखों में ऊब की उतरती परछाइयां उससे छिपी नहीं रहीं। यदि ज़रा भी देर लगी तो लोग पैसे दिए बिना खिसक जाएंगे।

लानत है इस पेशे पर। एक-एक पैसे के लिए लोगों के मुंह की तरफ देखना

पड़ता है। लोग भी बड़े सयाने हो गये हैं। उनकी गांठ से पैसा निकालना बोतल में फंसे कार्क को बाहर निकालने से भी कठिन है।

वह अपनी आवाज को बुलन्दी पर ले जाते हुए बोला -- मेहरबान, कद्रदान, अब अपने-अपने स्थान से मत हिलिएगा। आपको अपने-अपने भगवान की सौगंध। यदि आपके कदमों की तनिक भी धूल मुझ गरीब पर गिरी तो मेरी जान खतरे में पड़ जायेगी। मुझे मेरे उस्ताद ने यह शाप दिया था जो गत पैंतालीस वर्षों से मुझ पर घटित हो रहा है। मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप अपनी-अपनी जगह से हिलिएगा मत···साहबान, आप पैसे चाहें तो मत दें किन्तु तमाशा पूरा देखकर जाइएगा।

उसने जोर से डुगडुगी बजाई···

वह खुश हुआ। सब कुछ ठीक हो रहा है। भूमिका अच्छी बंध गई है। जाने वाले दर्शक रुक गए हैं···तो अब खेल शुरू किया जाए। पर आज घुटने पहले से ज़्यादा दर्द कर रहे हैं। ऊंचे स्वर में बोलते हुए महसूस होता है मानो एक चूहा आंतों के गुच्छे को दांतों में दबाकर गले के सुराख की तरफ खींच रहा है। वैसे भी स्साली इस ज़िन्दगी की बासी रोटी के सख्त किनारे चबाए नहीं जा रहे। उधर फेफड़े फटीचर हारमोनियम की जर्जर धौंकनी हो गए हैं जिनसे हवा लीक होने लगी है। पर वह भी ढीठ की तरह इस बेसुरे बाजे को बजाए चले जा रहा है।

सुबह यदि खाने को कुछ मिल जाता तो इतनी कमजोरी महसूस नहीं होती। भड़भूजा पेट अपना ही गोश्त इस तरह नहीं भूनता।

वह सोचों की कीचड़ में धंसने ही लगा था कि उसकी चेतना ने उसकी पीठ पर चाबुक मारी -- मूर्ख अभी तो तमाशा बाकी है।

कमजोरी को भीतर-ही-भीतर दबाकर वह टूटे वाक्यांश को मेहरबान की गोंद से जोड़ते हुए बोला—तो मेहरबान, आप देख रहे हैं सामने दो बांस गड़े हुए हैं। उनके ऊपरी सिरों पर एक-दूसरे तक रस्सी बंधी हुई है और इस रस्सी से लटक रहे हैं काठ के तीन चौकोर टुकड़े। आपको दूर से नज़र नहीं आ रहा होगा, पर इन टुकड़ों के विभिन्न रंग हैं। यह अलग बात है कि समय ने इन्हें बदरंग कर दिया है। आखिर इस दुनिया की कौन-सी चीज स्थायी है। हर वस्तु आहिस्ता-आहिस्ता खत्म हो जाती है···।

उसे फिर चाबुक पड़ी। सरवन मिसिर ने उसके हाथों में चाकू थमाते हुए कहा था—मजमे में खड़े होकर इस बात को कभी मत भूलना कि तुम्हारा उद्देश्य दर्शकों का मनोरंजन करके उनसे पैसे ऐंठना है···ठीक ही तो कहा था उस्ताद ने। लोग यहां मन बहलाने के लिए आए हैं, उसकी बकवास सुनने नहीं। लेकिन वह सोचता है···गरीब आदमी अपने को उलझाए रखने के लिए भगवान और फिलासफी का सहारा नहीं ले तो शायद मर जाए।

वह यह पेशा छोड़ना चाहता है। पर अपनी ज़िन्दगी की सड़ी पड़ी पोथी के पिछले सफे वह फाड़ भी तो नहीं सकता। क्योंकि इसके साथ एक बहुत बड़ा सवाल जुड़ा हुआ है···यह नहीं तो और क्या ?

उसे अपने पर तरस आता है। उसके अन्दर निचाट सूनापन है। भीतर से वह गूंगा है पर बाहर उसे कितना बोलना पड़ता है। वह कमाई ही बातों की खाता है। जरा भी बोलता है तो भीतर का गूंगा उसका मुंह बन्द करने की कोशिश करता है।

अपने आपको उस गूंगे की गिरफ्त से छुड़ाकर वह बोला—तो मेहरबान, लकड़ी के इन टुकड़ों पर मैं दस गज की दूरी से एक चाकू से निशाना लगाऊंगा। आप कहेंगे, इसमें विशेष बात क्या है ? यह तो कोई भी आदमी थोड़े अभ्यास के बाद कर सकता है। पर नहीं···मेरे खेल की खास बात यह है कि मैं आंखें बन्द करके निशाना लगाऊंगा।

उसने दर्शकों को देखा और ऊंची आवाज़ में बोला—आंखें बन्द करके अर्थात् लक्ष्य की ओर मेरी पीठ होगी।

उसकी इस घोषणा पर आगे बैठे कुछ लड़कों ने तालियां पीटीं।

मालतु भी इसी तरह उसके करतब देखकर तालियां बजाती थी। उसे खुश देखकर उसे अपना आप सार्थक महसूस होता था। पर यह सब रेत पर बने नक्शे के समान था। सरवन मिसिर के प्रचण्ड क्रोध की एक लहर आयी और सब कुछ धुल-पुंछ गया। टेसू के फूलों-सी अंगारा आंखों से उसे घूरते हुए मिसिर साक्षात् यमदूत लगा था।

उस्ताद की इज्जत पर हाथ डालते हुए तुझे मौत नहीं आयी। इतनी विद्या सिखाने की यही गुरु-दक्षिणा दी तूने।

मिसिर खंडा लेकर उसके पीछे दौड़ा था। हाथ उठाकर वार बचाते-बचाते भी उसके दाएं हाथ की छोटी उंगली कटकर पके बेर की तरह नीचे गिर पड़ी थी। लाख-लाख शुक्र है उस परवरदीगार का, मिसिर ने गुरु-दक्षिणा में उसका अंगूठा काटकर एकलव्य की तरह उससे अपनी विद्या वापस नहीं ली। वरन् वह बेमौत मर गया होता।

वह दुगुने उत्साह से बोला—अब आप वह चाकू भी देखना चाहेंगे जिससे मैं यह बेहतरीन खेल दिखाता आ रहा हूं।

दर्शकों को बोलने का अवसर दिए बिना उसने बीचोंबीच रखे टीन के बक्से से एक चाकू निकाला और उसे हवा में उछालकर दस्ते से लपक लिया। चाकू देख कई दर्शकों के चेहरे चमक उठे।

दस कदम भरता वह निशाने के सामने चला गया। अपने और लक्ष्य के मध्य दूरी को नज़रों से आंका जो छः गज भी नहीं थी।

अन्तिम बार डुगडुगी बजाकर उसने लक्ष्य की ओर पीठ फेरी, चाकू को नोंक से दाएं हाथ में पकड़ा और बाजू को तेजी से हवा में घुमाया। उसके मुंह से एक सिसकारी निकल गई। यह आज बांह को क्या हो गया है। नसें जैसे पथरा गई हैं। बाजू हिल नहीं रहा मानो कुहनी और कंधे के जोड़ जम गए हों। याद आया, मजमा लगाने के लिए जगह की तलाश में वह धूप की महानदी में किसी पेड़ की छवि के टापू तक पहुंचने के लिए कितना भटका था। बक्सा दाएं हाथ में ही उठा रखा था। पहले हल्के खेल दिखाते समय उसने उधर विशेष ध्यान नहीं दिया था। बांह भी तो अधिक ऊपर उठानी नहीं पड़ी थी। पर अब तो जैसे किसी ने पके टीसते फोड़े में जलती हुई सुर्ख सलाई दाग दी हो।

अब क्या किया जाए ? दर्शक चले गए तो ?

क्यों न दर्शकों को बातों में उलझाकर कुछ समय और लिया जाए और इस दौरान बांह को दबाया जाए—उसने सोचा।

एक निर्णय लेकर उसने तेजी से लोगों की तरफ चेहरा किया। चाकू को हवा में उछालकर लपका और बोला—मेहरबान, आपमें से कोई एक सज्जन सामने आ जाएं और बताएं कि सबसे पहले किस टुकड़े को निशाना बनाया जाए।

उसे तजुरबा है कि इन अवसरों पर लोग एक-दूसरे को आगे धकेलते हैं, स्वयं नहीं आते। उसे कुछ और वक्त मिल गया। वह वृत्त में मुस्कराते हुए चक्कर लगाने लगा और बांह को दबाने लगा।

— है कोई ऐसा बाबू जो आगे आकर बताए कि सबसे पहले किसे निशाना बनाया जाए ? मैं उससे कोई हीरे-मोती नहीं मांगूंगा। अपनी मर्जी का निशाना लगवाने के लिए सिर्फ एक रुपया···।

उसने हवा में सिर्फ एक उंगली खड़ी की और उसे चारों ओर घुमाया—एक रुपये का केवल एक नोट। पहले मैं पांच रुपये लेता था पर अब महंगाई को देखते हुए मैंने अपना रेट घटा दिया है·· सामने आइए और इन हाथों का कमाल देखिए— इस मजेदार खेल के लिए सिर्फ एक रुपया।

वह एक ओढ़ी हुई लापरवाही से चक्कर लगाने लगा, मानो उसे दर्शकों द्वारा पैसे देने या नहीं देने से कोई अन्तर नहीं पड़ता हो।

कोई आगे नहीं आया।

—कोई ऐसा शाहदिल मेहरबान बाबू नहीं है जो एक रुपया निकाल सके ?

किन्तु फिर भी कोई आगे नहीं आया। उसके भीतर उदासी का नाग फन उठाने लगा। अब अक्सर ऐसा होता है।

दर्शकों की प्रथम पंक्ति खिसकने का प्रयास कर रही थी।

अच्छा रुपया न सही, अठन्नी ही सही। बच्चा लोग ताली बजाओ।

पर किसी दर्शक की जेब से अठन्नी भी नहीं निकली।

कोई ऐसा शौकीन बाबू नहीं जो एक अठन्नी दे सके ?

कुछ प्रतीक्षा करके उसने जोरों से डुगडुगी बजाई और जैसे महत्त्वपूर्ण घोषणा करते हुए बोला-- अच्छा, आपके लिए विशेष छूट—सिर्फ पच्चीस पैसे—पहला निशाना लगवाने का मूल्य सिर्फ चार आना। मेहरबान जरा सोचिए आज जब दुनिया की हर चीज हमारी पहुंच से दो अंगुल ऊपर होती जा रही है, मैं कितना नीचे आ गया हूं। सिर्फ इसलिए कि यह जनता का तमाशा है --चार आने का तमाशा।

ऐसे अवसरों पर उसे अपने विवशता-जन्य पतन पर बड़ा विक्षोभ होता है। सचमुच वह कितना नीचे आ गया है।

याद आया, कल भी चार आने ही मिले थे। जी बकबका आया।

इसी बीच एक लड़का उठा और उसने बक्से के पास बिछी चादर पर चवन्नी फेंकने के बाद बायीं ओर के टुकड़े की तरफ इशारा किया। कुछ और लोगों ने भी कुछ छोटे सिक्के फेंके।

उसने डुगडुगी नीचे रखी और पहले वाली जगह पर खड़ा होकर चाकू की धार पर उंगली फेरने लगा -- साहबान, पहले यह खेल बड़ा खतरनाक होता था। लक्ष्य के पीछे मैं अपनी लड़की को खड़ा करता था। मेरी लड़की जवान थी। देखने में सुन्दर थी। उसने बहुत कम कपड़े पहने होते थे। दर्शकों के ठठ के ठठ आते थे। पर एक रोज वह किसी मर्द के साथ भाग गई। बाद में मैंने बहुत कोशिश की कि अन्य लड़की या मुंडू मिल जाए-- पर आपको पता ही है कि इस पेशे में बड़ी जान मारनी पड़ती है। कौन आता ? जब अपना खून ही धोखा दे गया तो दूसरों पर क्या आस रखी जा सकती थी – और न ही अब और लड़की पैदा करने की मुझमें सामर्थ्य है। घरवाली ने भी साथ नहीं दिया···

भीड़ ने एक ठहाका लगाया। वह ऐसी अश्लील बातों पर खुश होती है, उसे मालूम है।

पर यदि आप चाहें तो यह कल्पना कर सकते हैं कि मेरी नौजवान लड़की लक्ष्य के पीछे खड़ी है। उसने बहुत ही कम कपड़े पहने हुए हैं। यदि आप चाहें तो यह भी कल्पना कर सकते हैं कि उसने कोई वस्त्र नहीं पहना है। वह पूर्णतः नंगी है···

यदि सचमुच उसकी कोई बेटी होती तो क्या वह ऐसी गलीज बातें कह पाता —उसे अपने से जुगुप्सा हो गई।

— मैं उस नौजवान से कहूंगा कि वह लक्ष्य के पीछे खड़ा हो जाए और निशाने का कमाल देखे।

लड़कों की टोली में पुनः खलबली मची। दोस्तों ने उस लड़के को आगे धकेला पर वह फिर पीछे खिसक गया।

दर्शकों के सब्र के घड़े भर गए हैं, उसने नोट किया और निशाने की तरफ पीठ फेरी। घुटना जमीन पर दबाकर हनुमान-मुद्रा में आया, कंधे को दबाया, चाकू को हाथ से तोला, बांह को पूरे जोर से झटका देकर कंधे तक लाया और हाथ खोल दिया। चाकू बाज की तरह हवा को चीरता लक्ष्य की तरफ झपटा।

दर्शकों के कोलाहल को सुनकर वह कंधा मलता बड़ी अदा से मुड़ा।

उसकी रीढ़ से एक सरसराती लहर उठी और पल-क्षण में पूरे शरीर में फैल गई। यह क्या हो गया? चाकू निशाने से कुछ फुट आगे मिट्टी में सिर गाड़े पड़ा था। जैसे बहुत लज्जित हो।

यदि वह युवक उसके कहे अनुसार लक्ष्य के पीछे खड़ा होता तो? उसके शरीर के रोयें खड़े हो गए।

उसने लोगों की तरफ भयभीत नज़रों से देखा। वे उसे लानतें भेज रहे थे। शर्म से उसका सिर झुक गया। मन-मन बोझिल पैर उठाता वह चाकू तक आया। लोग ओए···ओए···कर रहे थे।

एक तरकीब बिजली की तरह उसके दिमाग में कौंधी। चाकू उसने बड़ी शान से उठाया और मुसकराते हुए बोला—मेहरबान, आप समझ रहे होंगे कि मेरा लक्ष्य-वेध खाली गया है। पर नहीं साहब, यह मैंने केवल इसलिए किया है ताकि आपको यह एहसास हो जाए कि यह खेल कितना खतरनाक है। सोचिए यदि पीछे मेरी लड़की या यह बाबू खड़े होते तो क्या होना था?

भीड़ के उखड़ते पैर उसकी बात सुनकर फिर जम गए। आप भी कह रहे होंगे कि बूढ़ा मसखरी कर रहा है। लीजिए, देखिए इन हाथों का कमाल। मैं सचमुच बाएं टारगेट को निशाना लगा रहा हूं।

अपने पूर्व स्थान पर आकर उसने चाकू को आगे से पकड़ा। पूरी ताकत लगाई और बांह को घुमाया। शरीर को एक झटका लगा। चर्र···बगल से कमीज फट गई। कन्धे तक हाथ पहुंचते ही उसने अंगूठे को बाकी अंगुलियों से जुदा कर दिया।

चाकू खटाक से लकड़ी के टुकड़े को छीलता हुआ आगे निकल गया।

उसे मालूम है, जब भी चाकू अपने निशाने पर लगता है तो तालियां बजती हैं अन्यथा शोर उठता है।

अब भी शोर ही उठा। ओए···ओए···का एक लम्बा सिलसिला।

आवाज़ें उसके कानों में सलाखों की तरह चुभने लगीं। लोग गालियां निकाल रहे थे।

वह जमीन पर मृत मछली के समान पड़े चाकू के पास आया। उसे हिकारत भरी नजरों से देखा।

आज इसने भी मालतु की तरह धोखा दिया।

मालतु चुपचाप चली गई थी। किसी घुमन्तू सर्कस के मालिक की उस पर आंख पड़ गई थी। वह चली गई सर्कस के बड़े शामियाने के नीचे रोशनियों के सैलाब में जिसका उन दोनों ने कभी सपना देखा था···और वह स्वयं किसी सड़क के किनारे गंवई भीड़ के टापू में कैद हो गया। उम्र की तरह बुढ़ापे के टर्मिनस पर खड़ा डुगडुगी बजाता रहा।

साहबान··उसने भरे स्वर में कहा—यदि यह चाकू ज़रा तेज होता तो अवश्य लकड़ी में खुभ जाता। मैंने कितनी बार अपनी मूर्ख पत्नी को डांटा-फटकारा है कि इससे पतंगों के कमानचे न तराशा कर, इससे चाकू कुंद हो जाता है। पर लड़की की तरह उसने भी कभी मेरी बात नहीं मानी।

लोगों की आंखों के भाव पढ़कर वह भीतर ही भीतर कांप उठा मानो वह भेड़ियों में फंसा एक कुत्ता हो जो अपनी दुम को पिछली टांगों में दबाकर कहीं छिपने के लिए टक्करें मार रहा हो।

उसके बार-बार आग्रह करने पर भी काफी लोग उसे पैसों की जगह गालियां देते चले गए। सरवन मिसिर ने भी कभी इन अवसरों को सम्भालने के लिए कोई गुर नहीं बताया।

उसे अब पैसों की कम, अपनी प्रतिष्ठा की अधिक चिन्ता थी। कुछ समझ नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए, दर्शकों को किस तरह सम्भाले? हाथ कांप रहे थे। माथे से पसीना पोंछ उसने डुगडुगी बजाई—बच्चा लोग ताली बजाओ।

प्रतिक्रिया में सिर्फ एक-दो हाथों के पीटने की आवाज़ें आयीं। उसके बाद मौन छा गया।

उसने दौड़कर चाकू उठाया। बड़ी फुर्ती से अपनी दायीं बांह को दो-तीन झटके दिए। कन्धे अभी तक दर्द कर रहे थे। लक्ष्य की तरफ पीठ फेरकर खड़ा होने और हाथ में चाकू पकड़ने के बाद भी वह निर्णय नहीं कर पाया कि खेल आगे दिखाए या यहीं बन्द कर दे। लोगों से क्षमा मांग ले, पैसे लौटा दे।

पर नहीं, यह कैसे हो सकता है? बात अब उसके अस्तित्व से जुड़ गई है। बिना लक्ष्य-वेध के उसका क्या मूल्य है? वह है ही क्या? एक कुंद चाकू जो और किसी काम नहीं आ सकता।

उसने महसूस कर लिया कि पैसे की कीमत वसूलने के लिए लोग सांस रोके उसकी बांह की हरकत की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब तो तमाशा दिखाना ही पड़ेगा। उसने सूखते मुंह, कांपते हाथों और कड़कड़ाते घुटने की परवाह न करते हुए उस्ताद को याद किया, कान छुए और दाएं हाथ को बिजली के झटके की तरह कन्धे की ओर घुमाया।

चाकू कमान से छूटे तीर की तरह सांऽऽ करता हुआ निशाने की ओर झपटा।

कोलाहल का समन्दर हहरा उठा। लोग सीटियां बजाने लगे। चाकू ने

निशाने में सिर गड़ाया होता तो तालियां बजनी थीं।

उसे लगा उसकी पीठ पीछे हाथों में वंदूकें ताने फायरिंग स्क्वेड खड़ा है। जी किया ऐसे ही पीठ मोड़कर उस बेवकूफ घोड़े की तरह झाड़ियों में सिर छिपाए रखे जो शेर को देखकर यह सोच आंखें बंद कर लेता है कि उसे कोई नहीं देख रहा है।

उसने निराशा में एक बार घुटने पर जोर से दुहत्थड़ मारा और मुड़ा।

चाकू दोनों बांसों के दरम्यान बंधी रस्सी को काटकर धूल में पड़ा था। लकड़ी के तीनों टुकड़े जमीन पर लुढ़के हुए थे।

लगा, जैसे उसकी खाल खींच ली गई है और लोग उस पर मुट्ठियां भर-भर नमक फेंक रहे हैं। कितने ही लोग वृत्त तोड़कर बीच आ गए थे। कुछ उसके चौतरफा उसे घेरकर खड़े हो गए।

—क्यों बे खूसट, हमारा जो इतना वक्त बरबाद हुआ है उसकी भरपाई तुम्हारा बाप करेगा?

—कुछ आता-जाता नहीं था तो अपने दामादों को जरूर बुलाना था?

लोग कमजोर देखकर उसे दबाने लगे।

उसका दिमाग सुन्न पड़ गया। चेहरे पर स्याही उतर आयी।

—माई-बाप मुझे···उसने कुछ कहना चाहा लेकिन किसी ने अवसर न दिया। कुछ शरारती लड़कों ने उसके बांस उखाड़कर परे फेंके। वह उधर लपका तो किसी ने रास्ता नहीं दिया। एक दर्शक ने उसकी डुगडुगी छीनी और भाग गया।

लोगों को अब इस तमाशे में मज़ा आने लगा था। उनके पैसे की कीमत वसूल हो रही थी। वह किंकर्तव्यविमूढ़ कभी इधर तो कभी उधर भागता। किसी ने उसके टीन के बक्से को ठोकर मारी। बक्से का ढक्कन ठल-ठल करता एक तरफ जा गिरा। कुछेक बच्चे बड़ों की शह पर ढक्कन रौंदने लगे।

उसकी चीज़ें बिखर गईं। मालतु की तस्वीर उड़कर पैरों के जंगल में खो गई। उसका तन-बदन सुलग उठा। वह उस ओर झपटा। किसी ने पीछे से लंगड़ी मारी। वह सम्भल नहीं सका। ठोकर खाकर कन्धे के बल गिर पड़ा। मुंह से एक हाय निकली।

गुस्से में उसने दांत किटकिटाए। मुट्ठियां कस गईं। इतना अपमान! और फिर वह भी इस आयु में!

किसी के बूट की ठोकर खाकर चाकू पंख की तरह उड़ता उसकी कोहनी के पास आ गिरा। उसका हाथ चाकू की तरफ झपटा। उठने की कोशिश में उसके घुटनों में कड़कड़ाहट हुई और हाथों की अंगुलियों की हड्डियों ने ऐसी आवाज़ की मानो किसी उखड़े हुए पुराने वृक्ष की टहनियां टूटी हों।

डूबती चेतना में लगा वह अंधेरे में खड़ा एक दरख्त है—बूढ़ा और व्यर्थ जिसे रोशनी की कुल्हाड़ी काट रही है।

उसका हाथ आसमान की तरफ लपका। चाकू ने मछली के पेट की तरह धूप में एक लश्कारा मारा। लगा, रस्सा कट गया है और मालतु लोट-पोट होकर नीचे पत्थरों पर आ गिरी है। उठने की कोशिश में वह अपने ही खून के छप्पड़ में हाथ-पैर मार रही है···दूसरे क्षण बूढ़ा मजमेबाज़ भी पीठ के बल पड़े अधकुचले तिलचट्टे की तरह सीधा होने के प्रयास में हवा में हाथ-पैर मार रहा था।

ख़त

□ महाराज कृष्ण शाह

आखिर क्या सोचकर कलम थामी ? और अगर खत ही लिखना है तो बिजली क्यों बुझा दी ? कुछ समझ नहीं पा रहा था—या समझ रहा था—पर निश्चित नहीं कर पा रहा था। कश्मीर में गर्मियों के दिन—और लोगों के लिए भले ही मौज-मस्ती के हों हम जैसों के लिए—मक्खियां, मच्छर और गटर की बदबू फैलाने वाले ही होते हैं। पर उसे लिखना है…बहुत आजज़ी दिखाई है उसने—चिन्ता भी है उसे बहुत। उसके बगैर अकेला मैं कैसा महसूस करता हूं, वह जानना चाहती है। मेरा ज़ेहन उस शब्द के लिए उतावला हो उठा, "प्रिय !" पर न जाने क्यों यह शब्द बेहूदा-सा लगने लगा…एक बेचैनी से दिल दहल उठा। प्रिय ? एक झिझक-सी होने लगी। लिखा तो उसने भी अपने ख़त में 'प्रिय' ही था पर मुझे कितना हास्यास्पद लगा था—जैसे किसी रोमेंटिक नावल से उधार लिया गया शब्द। फिर कौन-सा शब्द है जो लिखूं ? आकाश में सफेद हल्के बादलों में से चांद बिल्कुल बाहर निकल आया था—जैसे मेरी विवशता पर कमरे में कोई हंसा हो—सहसा पहली बार मैंने सारे कमरे को ध्यान से देखा—चांदनी पूरे कमरे में छितर आई थी और सारा कमरा रुआंसा लग रहा था। सभी चीजें अस्त-व्यस्त थीं…सवेरे के जूठे बर्तन…निकाले हुए कपड़े और एक कोने में किचन का बिखरा हुआ सामान…इन सब चीजों से नजरें हटाकर मैं एकदम हाथ में लिए कोरे पैड को देखने लगा। मन में उस अनुभव को जगाने लगा जो उसमें एक साथ जुड़ा हो—पर कहीं कुछ स्पष्ट नहीं लग रहा था—आंखें दूर आकाश में बिना उद्देश्य भटकने लगीं। पड़ोसी मकान के बरामदे का लैम्प जला। मेरी नजरें वहां घूमीं। कुर्सी में दुबके सरदार जी बराबर जम्हाइयां ले रहे थे। बराबर फैलता और सिकुड़ता मुखमण्डल। सरदार जी खिन्न होकर चांद की ओर एकटक देखने लगे—उनकी इस हरकत से मुझे एक अजीब-सी कोफ्त होने लगी। क्या वे भी इसी अर्थ में चांद देख रहे हैं जैसे मैं ? अचानक उठकर वे अन्दर कमरे में चले गये—पर बिजली का लैम्प जलता छोड़ गये। मेरे हाथ में पेपरवेट उछलने लगा—अचानक मेरे पांव फर्श पर गिरे पेन से छू गये—मुझे अपने कमरे का और अपनी उपस्थिति का

फिर बोध हुआ। मैं फिर से खत लिखने में जुट गया। हल्की-सी हवा चलने लगी थी – गर्मी का और अधिक अहसास हो रहा था—"गांव में इतनी गर्मी नहीं होती। अबके अपने लिए जरूर 'फैन' खरीदना", उसकी जिद थी। बहुत कोशिश करके भी मैं पच्चीस रुपये से ज्यादा नहीं बचा पाया था। यह देखकर कि पच्चीस रुपये में 'फैन' नहीं खरीदा जा सकता, मैंने 'बिटू' के लिए 'किट' खरीदना मुनासिब समझा था—उसी शाम दीनानाथ जी बहुत-सी इधर-उधर की बातें करने के बाद मुझसे पचास रुपये उधार मांगने लगे थे—यह सोचकर कि इनके मकान में रह रहा हूं, मैंने बड़ी सफाई से सिर्फ पच्चीस रुपये दे पाने की विवशता जाहिर की थी—जिस प्रकार पच्चीस रुपयों का उन्होंने स्वागत किया था उससे साफ जाहिर था कि उन्हें मुझसे पच्चीस की अपेक्षा नहीं थी—और मैं बाद में कितना पछताया था कि कम बोलकर दस ही क्यों नहीं दिये थे।

ऊपर की मंजिल में चलने की हलकी आहट हुई—मकान मालिक की लड़की, पूरे पच्चीस साल की कुंआरी, बेकरार टहल रही होगी और उसका बाप बीड़ी पर बीड़ी पीता इस सियाह चांदनी को देख रहा होगा…। एक लम्बा उसांस मेरे कमरे की खिड़की से गिरता हुआ आंगन में बिखर गया—

"ओह! बेटी—नींद नहीं आ रही तुझे?" मकान मालिक अपनी बेटी से पूछ रहा था।

"वैसे ही टहल रही थी, गर्मी बहुत है…।"

"क्या खाक गर्मी है? थोड़े से बादल हो जाते हैं तो लिहाफ लेकर बैठ जाती हो…तुम दिनोंदिन काहिल हो रही हो…।"

इस बार फिर एक भरपूर उसांस मेरे कानों से चिपक जाता है—सारे बदन में एक सिहरन-सी दौड़ जाती है।

"आखिर तुम गई क्यों नहीं उनके साथ?" इस बार पिता के स्वर में न चिड़चिड़ाहट थी, न आक्रोश…एक उदास भाव, बस।

—कैसे जाती?

—क्यों?

—ओफ! फैन क्यों बन्द कर दिया आपने?

—इसके चलते रहने से मुझे झपकी तक नहीं आती—खट-खट करता रहता है, बहुत पुराना है न, मेरी तरह…

…'प्रिय।' लिखना ही होगा, कितना ही बेहूदा और हास्यास्पद क्यों न लगे—पर एक रिश्ता होता है जो होने-न-होने पर भी निभाना होता है और रिश्ते तो अनकहे ही चलते रहते हैं। क्या वह सब लिखूं जो सच है? मात्र सच! जैसे मेरा मकान मालिक और जवानी को अलविदा कहती उसकी कुंआरी बेटी…पर

यह मात्र सच नहीं—सच या है, या नहीं है···पर यह कितने हैं और कितने नहीं हैं···यह मैं कितना जानता हूं—अपनी यह सफाई खत के लिए काफी थी—खत लिखने बैठा—बत्ती फिर से जलायी और कलम हाथ में थाम लिया—"बच्चों को प्यार, खूब चिंता रहती है···तुम छुट्टी का आवेदन दे दो—कुछ रोज आ जाओगी तो···आओगी तो···तो···।" नहीं फाड़ दो इसे···यह मुमकिन नहीं···वह भी कहां आने वाली है···लिख देगी छुट्टियां नहीं मिल रहीं। लिख दूं, नौकरी छोड़ दो··· दिमाग ख़राब हो रहा है···

ऊपर कोई फिर चलने-फिरने लगा है···सीढ़ियां उतरने की आवाज़ और मेरे दरवाजे पर दस्तक···। ओह ! यह क्या ?

—आइये···कहिए क्या सेवा···

—माचिस है आपके पास···पपा लानी भूल गए···सिगरेट की लत है न···

—वहां उस कोने में है—वहीं जहां बर्तन रखे हैं।

—आप सोये नहीं···मैं डर गई थी, आप सो न गए हों।

—ऐसा है कि···

—गर्मी बहुत है···।

—जी हां···।

—नींद नहीं आती···मैं ले रही हूं।

—क्या ?

—माचिस···।

—ओ हां !···अच्छा।

गई पर कुछ हिला-सा दिया···कभी-कभार जब भी मेरे कमरे में आती है तो मेरे दिल में सौ प्रकार की प्रतिक्रियाएं होती हैं···

रात की खामोशी में मच्छरों और मक्खियों की मिली-जुली भनभनाहट उभरती है···दूर बजते रेडियो पर कोई क्लासिकल धुन और रमज़ान भिखारी की पागलपन में या मच्छरों से बेचैन होकर दी गई नंगी गालियां···सब कुछ ऐसा अहसास दे रहा था जैसे सड़क पर आवारा घूम रहा हूं···बिल्कुल बेघर—फिर भी मन की एकाग्रता का निश्चय और किसी दूसरी जगह रहने का प्रयत्न ढहता हुआ नजर आ रहा था···

—तुम लैम्प क्यों नहीं बुझातीं ? कमरे में ढेर सारे मच्छर घुस आये हैं, फिर उसी चिड़चिड़े भाव से पापा ने बिटी को टोका है।

—आप मच्छरदानी क्यों नहीं लाते ? अपनी आवाज़ को और सख्त तथा ऊंचा करके बिटी उबल पड़ी।

टिक ! लैम्प बुझ गया किन्तु दो सूनी आंखें फिर क्लांत-शांत आकाश तकने लगीं। आकाश मन में उठे अभावों का प्रत्यक्ष प्रमाण—न जाने क्यों मैं ऐसा

सोचता हूं, सम्भव है उसने आंख झपक कर नींद का स्वागत किया हो। पर यह कैसे हो सकता है···उसांसों का अविरल फव्वारा मुझे बराबर छूता हुआ भिगो रहा था···।

एक बार फिर आधे लिखे खत का मज़मून मैं पढ़ने लग जाता हूं—प्रत्येक शब्द कोरी लिखावट के सिवा कुछ नहीं, बस जैसे दफ्तर की किसी फाईल का यंत्रटंकित अक्षर···मैं कोशिश करने लगा अपनी पत्नी का वह रूप स्मरण करूं जो मुझे उत्तेजित करता था, भावनाओं के बवंडर में उछालता-तैराता था—एक क्षण के लिए इस स्मरण की खोज मैं आकाश के मनमोहक और मादक चलचित्रों में करने लगा···एक मटमैला पर्दा···गहरा अंधेरा···फिर कोशिश की···हड्डियों के अस्त-व्यस्त पिंजर···ढेर के ढेर पिघलते सीसे···ओफ। वह सौन्दर्य, वह लावण्य···वह पाठ्य-पुस्तकों की रोमानी कवितायें···कहीं हैं क्या? नहीं, सिर्फ पढ़ा, सुना है···कभी देखा नहीं···हां सोचा जरूर और मैं मानता आया हूं, मैं छू चुका हूं—भीग चुका हूं···ऐसी कितनी बातें हैं जिनको सोचकर ही संतोष करना पड़ता है—किसने ये सारे स्वप्न हमारी आंखों से छीने हैं?

मैंने आकाश की ओर से घबराहट में आंखें हटा लीं और सिगरेट सुलगाने के लिए माचिस तलाशने लगा। मैं भूल गया था कि माचिस वह ले गई है। बाहर के गलियारे में कुछ फुसफुसाहट होने लगी···किसी के दबे कदमों चलने की आवाज़। यह सब नया नहीं है मेरे लिए—पहले-पहल कुछ अजीब लगता था—उठकर दीवार से कान लगाकर या चिक की ओट में बैठकर इनकी बातें सुनता था—पर अब शर्मिन्दा होता हूं···

—पापा सो गये हैं तेरे? लड़के ने शायद उससे निर्भय रहने का रास्ता पूछा था।

—तुम कई दिनों से नहीं आये···मैं डर गई थी···

—किस बात से?

—डर गई थी···ऐसे ही।

—मुझे अब यहां इस तरह आना बहुत अपमानजनक लगता है, बिट्टू!

—शी···आहिस्ता, ये सुअर अभी जाग रहा है···

—तुम्हारा वहम है बिट्टू···कौन जागता है? सब सो रहे हैं···खूब खुर्राटे ले-लेकर सो रहे हैं··जागने की किसे फुर्सत है?

—तुम बहुत बड़ी बातें करने लगे हो।

—जब आदमी का पेट आधा रह जाता है तो बाकी पेट वह बड़ी-बड़ी बातों से भरता है।

—मुझे भी कुछ बड़ी बातें सिखाओ न। मैं तो रोज़ ही आधा पेट रहती हूं···।

—क्यों, तुम रेडियो नहीं सुनतीं··भाषण नहीं सुनतीं···अध्यात्मवाद और

भारतीय संस्कृति पर किसी का लेक्चर नहीं सुनतीं···एक बार ध्यान से सुनो सारी भूख मिट जायेगी···

—-कोई और रास्ता नहीं ?

—है। चलो भाग चलें।

—कहां ?

—कहीं भी।

—पागल न बनो। आज मिलने का यह चोर दरवाज़ा है, कल फुटपाथ तक पर जगह न मिलेगी···है ही क्या हमारे पास···? किस बिसात पर भागेंगे ?

— क्यों, मुझ पर भरोसा नहीं···मैं और कुछ न सही मजदूरी तो कर सकता हूं··तुम्हें खुश रख सकता हूं।

—क्या करोगे तुम··पहले ही बहुत हृष्टपुष्ट हो न···तिल-तिल करके अपने शरीर को पुस्तकों में गला दिया···अब यह शरीर कोई कठोर काम कर सकेगा ?

—पहले-पहल दिक्कत तो होगी पर फिर आदी हो जाऊंगा।

—दस दिन में तुम्हारा शरीर अस्थि-पिंजर हो जायेगा···मैं इन्तजार करूंगी··तुम्हें जॉब मिलेगा···मुझे यकीन है···

—ओफ ! जॉब···

—चलो वहां···पंडाल पर कुछ देर···

— नहीं अब जाता हूं···

—ऐसे ही जाओगे···कुछ देर···

—हां, ऐसे ही···आज जी कुछ अजीब-सा···

—क्यों मुझसे बोर हो गये हो

··· ··· ···

—तब चलूं मैं···चलती हूं···

—अ-शा···

—अब क्या है ?

—आह !

—आह !

धत् और नहीं देखो। चिक उतार दो···आंखें बन्द कर लो···उनकी मजबूरी है···आये दिन की—कुछ याद आ रहा है···बहुत कुछ ठीक हो···शायद कुछ भी नहीं··हां, खत लिखना है···फिर सन्नाटा···फिर दबे कदमों ऊपर के कमरे में चलने की चरमराहट···

तू कहां गई थी ? पापा फिर टोक रहा है···

—बाथरूम।

—क्यों ?

—नहीं जाती ? क्या यहीं इसी कमरे में···।

—ओहो···मैं पूछ रहा था, तबीयत ठीक है न ?

—हां, ठीक है···आप कुछ अस्वस्थ लग रहे हैं···गोली दूं—नींद की ?

—नींद की नहीं···कोई ठोस गोली दो···हमेशा सुलाने वाली···

फिर कई तकाजे, कई सफाइयां और दो तरफा विवशता के आरोप-प्रत्यारोप भरे आंसू··गीले वक्ष, सुबकती छातियां···सुलाने वाली रात की पीटती हुई थपकियां···रात बिल्कुल चुप·· निरीह चुप··नींद का ऊपरी तौर पूरा साम्राज्य —फिर सोचा··क्या खत लिखना बहुत जरूरी है··· क्या किसी को अपना कुशल भेजना आवश्यक है ? किस ज़िन्दगी का समाचार, किस खुशी की खबर, कौन-सी चीज सांझी होगी···या हो सकती है ? यही न कि उम्र की कोई रोक न होते हुए भी एक दिक्कत है···हर प्रकार से तुम्हारा पति होकर भी सिर्फ कुछ सिक्कों की खातिर जलावतन हूं और कइयों को घरों में ही जलावतन देख रहा हूं···। कोई जरूरत नहीं कि कहीं गांव से निकाल दो या शहर से निष्कासित कर दो मुझे। मैं तुम्हारे पास से ही निर्वासित हूं···लिखूं फिर तुम्हें···देखो फिर चांद निकल आया है।···पढ़ो···यह कोरा खत पढ़ना ही शायद बेहतर रहेगा।

चेहरे

□ डॉ० उषा व्यास

आधे भिड़े दरवाजे के सामने खड़े-खड़े तर्जनी से ठक्-ठक् करती हूं। कोई नहीं आता। भीतर से एक कर्कश स्वर—"तेरा बेड़ा गर्क हो...सम्भाल कर क्यों नहीं रखा...रोज-रोज..." सहसा मेरे सामने से कीचड़ से भरी नाली में दूध-सा कुछ बह गया।

सहम कर साढ़ी की पटलियां अंगुलियों से उठाकर ऊपर देखती हूं—कहीं गलत जगह तो !

नहीं, नेमप्लेट वही है—आर० एस० थापर ! उखड़ी-उखड़ी पालिश के साथ था, सारा ही मिट गया है।

मैं फिर करती हूं— ठक्, ठक्। "कौन? वे घर में नहीं...जरा देख तो मुन्ना !"

बरामदे में बिछी दरी पर टांगें फैलाए अखबार की तस्वीरें देखते बच्चे अचरज से खड़े होकर मुझे देखने लगते हैं।

तीनेक साल का बच्चा पास आता है—सिर्फ जांघिया पहने। नन्हीं-नन्हीं हथेली से गले से पेट तक चू आई मैली, पसीने की धार पोंछता हुआ, बोलता नहीं —जीभ बिराकर मुड़ने लगता है।

अटैची उठाए मैं कुछ और आगे हो जाती हूं। "चाचा जी, हैं? मैं नागपुर से...।" पीठ फेरे खड़ी औरत गीले हाथ पल्लू से पोंछती घूम पड़ती है। पहचान जाती हूं—चाची हैं—त्रिवेणी चाची।

"तू.. तू...अरे छुटकी !" हां, कहूं इससे पहले ही आटे और हल्दी से गंधाती बांहों में सिमट जाती हूं।

"इतनी बड़ी हो गईं, पहचान में नहीं आती है ! दरअसल बात यह है बेटी, तुम्हारे चाचा के पास आने-जाने वालों का जमघट ही लगा रहता है। एक पल भी चैन नहीं।"

अन्दर से बच्चों की फुसफुसाहट आ रही है। दस साल का शान्तनु छोटे को मां की गोद में धकिया कर हाथ जोड़ता है "बम्बई वाले ताऊ हैं न ! उनकी लड़की है शैलजा। जीजी हैं बड़ी वाली ! तुम भी जय करो मुन्ना।" बच्चा कहा

नहीं मानता। रिरियाकर छाती में घुसने लगता है।

"जाने दीजिए। ऐसे ही ठीक है। बड़ा होगा तो करेगा।" मैं उसे मां की जिद से मुक्त कराने के लिए कहती हूं।

"मन का है। नहीं तो नमस्ते-टाटा सब करता है। पूरी ए-बी-सी पढ़ लेता है। जीजी को सुनाओ तो ज़रा वह—ए फार एप्पल···बी फार···।

मैं हंसी रोकने के लिए रसोई की ओर देखती हूं—प्लास्टिक की कुछ छोटी-बड़ी शीशियां। वनस्पति घी के एक-दो डिब्बे हैं। एक अजीब-सी सूं-सूं सिपट-सिपट की आवाज़ आ रही है।

"रोशनी, रूपम कहीं गए हैं क्या? दिखाई नहीं दे रहे!" "रूपम के इम्तहान निकट हैं। शाम को ट्यूशन पर जाने लगा है। रोशनी अन्दर होगी··· रोशनी, देख कौन आया है?"

चौदह साल की लड़की हाथ में पकड़ा फर्श का पोंछा धप से गिरा कर नमस्ते कहती है। वहीं दीवार के साथ सटकर खड़ी डरी-डरी-सी देखती रहती है। सुडौल देह, लम्बी-लम्बी काली आंखें। चेहरे का गोरापन मैल ने निगल लिया है। संकेत से पास आ जाती है वह।

"बड़े काम-धाम करने लगी! सयानी हो गई···शरण की शादी में ही देखा था। तब मेरे गले में पड़ी सीप की माला के लिए जिद किया करती थी। याद है?" मैं उठकर उसका गाल थपथपाते हुए कहती हूं, "कौन-सी क्लास है अब?"

"नवीं···"

मुझे लगा ज्यादा बोलना नहीं चाहती, इसलिए तेजी से मुड़ गई। चुन्नटों से उधड़ रहे फ्राक, हाथों और चेहरे पर मैले पानी के छींटे कुछ स्पष्ट करने लगते हैं। नाली में चिट्टा-चिट्टा क्या बहा था? अन्दर सूं-सूं सिपट-सिपट क्या हो रहा था? शायद दूध बह गया था···

रोशनी रो रही है···फर्श पर पोंछा लग रहा है।

तार पर लटकती धूप गहरे भूरे रंग की होकर साथ वाली टूटी दीवार पर जमे कण्डों तक खिच गई है।

"तुम्हें प्यास लग रही होगी बेटी?···कुछ ठण्डा लाऊं?"

"जी, नहाऊंगी पहले तो!"

मैं अन्दर ले जाकर अटैची खोलती हूं। तौलिया, साबुन-साड़ी निकालती हूं। चाची प्लास्टिक की नीले रंग की बाल्टी बाथरूम में रख गई हैं। नल के मुंह से बच रही पानी की बूंदें तिप्प-तिप्प करके बाल्टी में गिरती हैं।"

रसोई से सटे अधखुले बाथरूम में घुसते ही कोने में पड़े भीग रहे कपड़ों से उड़ती अजीब-सी दुर्गन्ध से सिर भन्नाने लगता है। जैसे-तैसे नहाने के बाद नल बन्द करते हुए सुनती हूं—

"मां, शिब्बू कह रहा है पिछले महीने···।"

"धीरे बोल। हां, क्या कहता है शिब्बू?" "पिछले महीने दूध के पैसे नहीं मिले हैं···मिठाई नहीं दे रहा।"

"अच्छा चल, बाबू जी की कुर्सी के ऊपर टंग रही धोती के पल्लू में बंधे हैं दस रुपये। भाग के जा। कहना हमारे मेहमान आए हैं। बढ़िया खस्ता मठरी और खोये की मिठाई चाहिए। हं, चौराहे का चोर है। पैसे ले कर भी बच्चों को ठग लेगा।"

गीले बालों के नीचे तौलिया रखते-रखते बाहर निकलकर देखती हूं—चाची ने भी धोती बदल ली है। हाथ-मुंह धो लिया है। दाईं कनपटी के पास चुटकी भर झाग बुसबुसा रहा है। दो स्टूल जोड़ कुछ खाने का सामान रख रही है।

"खाली पानी ही पिऊंगी चाची! इतना लम्बा-चौड़ा क्या जुटा रही हैं अब?"

"अरे, तुम्हारे खाने लायक ऐसा कुछ नहीं बेटी!" वह भी मोढ़ा खींचकर मेरे पास बैठ जाती हैं। पास खड़ा मुन्ना बिटर-बिटर ताकता रहता है।

"ले, लो न!" प्लेट उसके आगे खिसका देती हूं। वह पहले तो भयमिश्रित आंखों से मां को देखता है, फिर दोनों मुट्ठियां भरकर अजीब से घिनौने ढंग से चाटने लगता है।

आधे से ज्यादा शरबत पी चुकी तो लगा मुंह में नन्हीं-नन्हीं गोलियां··· देखा—गुलाबी पानी में तैर रही चींटियां···जीभ पर एकाएक कितने ही छाले स लिसलिसाते हैं।

"ज्यादा ठण्डा नहीं है न। बावला है शान्तनु। बर्फ नहीं लाया। एक बार में एक ही काम करेगा बस।" मैं जवाब नहीं देती।

"चाचा जी कब आएंगे? आठ तो बज गए!" मैंने बात बदलनी चाही।

"अरे, उनके आने का कुछ ठीक नहीं! सुबह जाकर रात आठ-नौ से पहले कभी लौट नहीं पाते। तू थक रही होगी। कितना लम्बा सफर है। थोड़ा आराम कर ले।" चाची उस उमस-भरे बरामदे में मंडराते मच्छरों को हाथ से हटाने लगती हैं।

इतने में बाहर का दरवाजा हल्की चरमराहट के साथ खुलता है। "मुन्ना!" पुकारते हुए चाचा जी आ रहे हैं। पीछे-पीछे रूपम। मुझे देखकर ठिठकते हैं।

"अपनी शैलजा है, बम्बई वाले दद्दा की···पहचाना नहीं?" चाची उनके हाथ का थैला लगभग छीनते हुए कहती हैं। मैं साड़ी का छोर पीठ पर से आगे खींचकर उठ पड़ती हूं। हाथ जोड़ती हूं।

"अरे···आं हां, समझा। कैसे भूल गई बेटी!" वह चश्मा उतारकर फिर आंखों पर लगाते हुए निकट आ मेरे सिर पर हाथ फिराने लगते हैं। उनके दुलारने का ढंग ठीक पापा-जैसा है। ठीक उन-जैसा ममत्व, वात्सल्य स्नेह। गौर से देखती

हूं—अतिरिक्त उल्लास में डूबा चेहरा पिछले कुछ सालों में कितना बदल गया है।

"तूने आने का ठीक लिखा होता तो अपने आप जाकर लिवा लाते। पगली, घर मिलने में दिक्कत···।"

"जी नहीं, बम्बई से पापा ने आपका पता भिजवाया था।" "हूं···अच्छे तो हैं दद्दा ! कभी दिखते विखते नहीं आजकल।" "ठीक हैं। बहुत व्यस्त रहते हैं। अब तो ट्रान्सफर हो गया।"

"कहां?"

"पूना। लास्ट प्रोमोशन था। अगले अक्तूबर में रिटायर हो जाएंगे।"

"सुनो, पानी तो लाओ ज़रा। उफ कैसी गर्मी है !" कमीज उतार कर वह पंखे की तरह झलने लगते हैं।

हल्का-सा दुबलाया दढ़ियल चेहरा लिये सकुचाया-सा रूपम एक बार नमस्ते कहकर बरामदे में स्टूल पर रखे पुराने डिज़ायन के घरघराने वाले पंखे की जोड़-तोड़ में जुट जाता है।

"कैसे आई ? आजकल क्या छुट्टियां···?"

"जी, यहां युनिवर्सिटी में दसेक दिन का सेमिनार अटेण्ड करना था।" "हूं कहिए साब ! दिन में पढ़े थे, रोशनी बेटा ?" शान्तनु के हाथ से पानी का गिलास थामते हुए कहते हैं।

"कहा नहीं मानता है बाबू जी। हमने कहा किताब लाओ तो झोंटा पकड़कर चिढ़ाने लगा—रोशनी की बच्ची दाल-रोटी कच्ची।"

"हम बताएं बाबू जी, जीजी ने आज सारा दूध गिरा दिया था। अम्मा से पिटी, मजे आ गए !"

"हट ! तू तो जैसे कभी पिटता नहीं !" रसोई से राई-जीरे का तीखा छौंक। गर्मा-गर्म रोटी सिकने की गन्ध ! मुझे भूख-सी लग जाती है।

"रूपम, मेरा टाइप-राइटर नीचे रख दे। छुटकी के लिए कुर्सी-मेज बाहर ले आ।"

"इसका नाम लो न ठीक ! यह छुटकी-छुटकी क्या ? बड़े कालिज की मास्टरनी हो गई अब।" चाची थालियां पोंछते हंसने लगती हैं।

"अरे हां, छुटकी तो है ही ?" वह लाड़ से ज्यादा दिखावे के नीचे मेरा बड़प्पन ढांपना चाहते हैं।

"नहीं, ऐसा भी क्या ! अन्दर ही दरी पर एक साथ बैठकर खाएंगे।" "अन्दर तो गर्मी होगी।" रूपम कहता है।

चाचा जी बुरादे की अंगीठी से उड़ती बेतरह कालिख और किचकिचाने वाली दरी को देखने लगते हैं—"तुम्हें दही-बड़े पसन्द हैं न। यह नुक्कड़ वाला शिव्वू अच्छे बनाता है। पता होता कि तुम आई हो तो लेता आता।"

तभी कांच के गिलास छलका-छलकाकर धोता शान्तनु बीच में ही बोल उठा, "बाबू जी, हम गए थे उसके पास। बोला कि···"

तभी चाची आकर उसे घसीट ले जाती हैं, "चुप क्यों नहीं करता? चौट्टा, सौ बार कहा कि बड़ों की बात में नहीं बोलते? चल भाग···। यह चाबी ले जा। रोशनी से कह कि फर्श धोकर जीजी के लिए खाट बिछा।

"हुंह।"···

एकाएक सामने से पिछले तेईस साल रेल के डिब्बों की तरह धचककर सरकने लगते हैं। मुझे याद है जब हम गांव के पुराने मकान में सब एक साथ रहते थे। एक बार मेरी आंखें दुखी थीं तो चाची ने नैनादेवी को चांदी की आंखें चढ़ाने की मनौती मानी थी। साईं काका के हुक्के का बासी पानी आंखों में डलवाने का नियम कभी टूटने न दिया था। मां कहा करती—छोटी बहू, तुम बिगाड़ दोगी इसे! और वह बिना कुछ सुने अतिरिक्त स्नेह से भरी छाती में कसे-कसे बेतरह मुझे चूमती चली जातीं। चाचा का लाया काले कांच का हाथी अब भी मेरे पास कहीं रखा है।

कालिख उड़ा-उड़ाकर जलती अंगीठी से उठ रही लाल लौ में चाची का चेहरा ठीक वैसा दमक उठता है, जैसा तुलसी के चौरे पर दिया बालने से दमक उठता था। छरहरी सुडौल देह। सोने-सा रंग! बड़ी-बड़ी मछली-सी काली आंखों में ढेर-सा काजल! पके शहतूत-सी गुंथी काली घनी बरौनियों के बीच दप-दप लाल टिकुली। होंठों पर ठहरी लजीली मुसकान।

एक बार अपने ही हाथों टिकुली लगाने की जिद से चाचा ने शरारत से घूंघट उघाड़ दिया था। शान्ता बुआ ने देख लिया था और वह पानी पी-पीकर कोसती फिरीं—"कैसा खोटा वक्त आ गया! दिन-दहाड़े बहू का घूंघट उघाड़ा! कोई क्या कहेगा। भले घर के मर्द···।"

लाज से लाल पड़ गई चाची हांफती-हांफती ओसारे में चली गई थीं।

आज जैसे वह टिकुली अभावों की घनी आंच से पिघलकर आंखों में अंज गई है। धुएं से ललाती पनीली आंखें देखकर सोचने लगती हूं—उस नवोढ़ा और सामने बैठी भुरभुरा रही औरत के बीच का सच कहां खो गया है?

चाची फूली रोटी मेरी थाली में रखते हुए कहती हैं, "क्यों छुटकी खा नहीं रही? स्वाद नहीं लग रहा होगा न कुछ।"

मैं कुछ भी नहीं कह पाती। जल्दी-जल्दी कौर निगलने लगती हूं।

स्वाति कहां है आजकल? मेरी ज्वाइनिंग-रिपोर्ट टाइप करते-करते हाथ रोककर चाचा जी पूछते हैं।

"गाजियाबाद में ही सैटिल हो गई है अब! मुन्ना भी है गोद में।"

"अच्छा, कैसा है ? सुन्दर होगा। जरूर बाप पर गया होगा !" चाची उठ कर बैठ जाती हैं।

"और मांजी ?"

"अच्छी हैं, जब से ऑपरेशन हुआ, जोड़ों में दर्द रहने लगा है।"

"कैसे उरिन होंगे हम लोग बिटिया ! वे तो लक्ष्मी हैं साक्षात !"

फिर उनकी बड़ी लड़की कुन्नो की शादी, ट्रेन की चोरी, इसी सिलसिले में बिकी बाप के हिस्से की पुश्तैनी ज़मीन, नौकरी का छूटना और फिर नयी नौकरी की खोजबीन की कहानी ! ऐसी कितनी ही दरारों को उन्होंने अपने सहारे के हाथ दे-देकर जोड़ा-सिया है। बड़ी रात तक रामकहानी सुनाते रहे।

"अभी तो तू रुकेगी न बेटी ?"

"जी एक हफ्ते तो सरकारी काम है। बाकी चार दिन की छुट्टियां भी हैं वैसे।···"

उनकी लम्बी-लम्बी बातों से अजीब उकताहट-सी लगने लगी है। नींद का बहाना लेकर मैं सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते ठिठकती हूं। रोशनी के कान पर झुका-झुका शान्तनु कह रहा है, "सुन, छुटकी दीदी ढेर सारे आम, टाफियां लायी है। अपने हिस्से की भी गुठलियां मुझे लेने देगी ? बोल"। "नहीं···?"

"अच्छा, तो कल गिरा दूंगा स्याही तेरी सारी किताबों पर !"

"खी···खी-खी-खी···।"

पिछले छह दिनों से बड़े-बड़े चौखाने वाली नयी चादर बिछे बिस्तर की गंध में डूबे-डूबे सोना आज नहीं हो पा रहा है। मैं पीछे हथेलियां टिकाए चुपचाप पांव फैला लेती हूं। सामने सड़क पर बसों-टैक्सियों, स्कूटरों की मिली-जुली घरघराहट है। ऊंची सफेद बिल्डिंग से चिपक रही नियान लाइट की 'ई' आज नहीं जल रही है। हनुमान मन्दिर के नीचे धूप वालों की दुकान के अधखुले शटर से चिचियाकर भागता हुआ कुत्ता देखकर सोचने लगती हूं।···

अपने फ्लैट का ताला बन्द करते हुए मैंने डॉ॰ मुक्ता सेन की झबरी बिल्ली बाहर निकाली थी या नहीं। पल भर के लिए मुझे लगा जैसे अन्धेरे बन्द कमरे में म्याऊं-म्याऊं करती हुई उस बिल्ली ने सोफे के सारे कुशन उधेड़कर रुई-रुई नोंच दी है।

नींद नहीं आती तो उठकर टहलने लगती हूं। नगरपालिका के नल के पास उगे नीम के पीछे निर्जीव-सी चांदनी ! टूटी शीशी की किरचों की तरह बिखरे बादल ! सब कुछ अचानक सूना-सूना लग आता है। शान्ता बुआ कहती थीं—दुलहन बनने से पहले पीढ़े पर बैठी हर लड़की आषाढ़ के चांद की तरह पीली पड़ जाती है।

हुंह, झूठ।

निचली दीवार पर एक साया-सा कांपता हुआ तैर रहा है। रूपम घूम-घूम कर पढ़ रहा है शायद।

छज्जे पर दोनों कुहनियां टिकाकर नीचे झांकती हूं—चाचाजी की मेज पर कागजों का ऊंचा ढेर है···अब भी वह टाइप कर रहे थे। नीचे चटाई पर अस्त-व्यस्त सो रही चाची के ब्लाउज के हुक को खींच-खींचकर मुन्ना कुछ टटोल रहा है।

"तुम भी सो जाओ अब ! काम कर-कर के बेहाल हुए जाते हो ! देखते नहीं, तुम्हारी खटर-खटर से छुटकी को नींद नहीं आ रही होगी।"

मैं झट पीछे हट जाती हूं। कहीं उन लोगों के सामने न पड़ जाऊं। और वे अच्छे बच्चे की तरह कहा मानकर कुर्सी की पीठ पर लग रही गद्दी पर सिर टिकाकर खर्राटे भरने लगते हैं।

रोशनी जाग गई है। उसके कदमों की आवाज़ सुनाई दे रही है। साथ वाले आंगन के बीच खुलने वाली खिड़की से कूदकर सुराही से पानी उड़ेलते रूपम को देखते ही मुटल्ली पड़ोसिन चीखती है, "पानी लेना हो तो भइए, पूछ तो लिया करो कम-से-कम ! सुबह होते-होते ठण्डे पानी की एक बूंद नहीं रहती। तुस्सी दस पैसे दी सुराही नहीं लिया सकदे। खस्ता-मठरी रोज खान्दे हो ?"

"एक गिलास भर जीजी के लिए चाहिए मौसी। हमारी सुराही मुन्ने ने तोड़ दी सुबह।" लौटते हुए रूपम ने कहा। उसकी आवाज़ में टूटन थी।

चाचा जी बौखलाए-से नींद में ही बोल उठे, "रात को भी तुम लोग मरने नहीं दोगे ! कहां चला जाए आदमी भला ! तुम देखो न, इसकी तबीयत क्यों गिरने लगी है ! कल कश्मीर मेडिकेट में दिखा लाओ।"

"तुम सो भी रहो चुप से !" रोशनी के माथे पर तैर रहे ठण्डे पसीने को आंचल से पोंछती चाची उसे निकट खींच लेती हैं, "क्या दिखला लाऊं डॉक्टर को ? फ्राक छोड़ साड़ी पहनने को हो आई है। अब रोज-रोज बीमार तो···।" वह अतिरिक्त रुआंसी हो उठती हैं।

मां के बार-बार कहने पर मुझे घुमाने लाया रूपम मुझसे एक निश्चित फासले पर चल रहा है। हाथ में पकड़ी किताब पर कड़ा कसाव है।

"क्यों रूपम, बोलोगे नहीं ?" लम्बे इन्तजार के बाद मैं खुद ही कहती हूं।

"बात यह है जीजी, मेरा इम्तहान निकट है। मैं घर बैठकर पढ़ना चाहता था पर मां···"

"तो लौट चलें ?" मुझे गुस्सा आ गया।

"नहीं-नहीं अब नहीं···" उसे अपनी फूहड़ता का आभास हो गया जैसे। फटी चप्पल पहने वह और भी सिमट-सिमटकर चलने लगा था।

पुरानी मण्डी की ढलाई उतरकर हम रघुनाथ चौक में आ गए। ढाबों में भुनते तेज मसालों की गन्ध, ताजा मिठाइयों की गन्ध, मोतिया के फूलों की गन्ध, शाही धूप की गन्ध, इत्र और पान की गन्ध—ढेर-सारी खुशबुओं में नहाई शाम ! चौक में बड़ी गहमा-गहमी है। कभी-कभी शराब की तीखी गन्ध का कोई झोंका उड़-उड़ नाक छू जाता है।

साड़ी हाऊस में जीजी के लिए कश्मीरी सिल्क की दो साड़ियां पैक करवाते मैंने देखा छोले-भठूरे की दुकान पर खड़े एक सज्जन घूर रहे हैं। भारी भरकम थुल-थुल जिस्म। पान रचे मोटे होठों पर दबे सिगार से धुएं के छल्ले उड़ाते, हमारे बाहर निकलते ही रूपम के निकट आ खड़े होते हैं। अभिवादन में हाथ जोड़ देती हूं।

रूपम ने कहा "मेरी जीजी है। नागपुर से आई है। वहां यूनिवर्सिटी में ज्योग्राफी की लैक्चरर है।" अन्तिम शब्दों पर उसने बड़ा जोर दिया।

"ओ आई सी।" और बड़ी अजीब-सी दृष्टि से देखते हुए बोले, "इनको घर लाना कभी। आप से मिलकर खुशी हुई।" फिर वह हो-हो करके हंसते हुए मन्दिर के सामने फुटपाथ पर बैठी हुई फूलवाली के टोकरे पर गए। एक हार उठाया, गले में लपेट लिया। और एक रुपया लापरवाही से उसकी टोकरी पर तेजी से फेंककर मुड़ गए। उनके कन्धे से लगी सो रही बच्ची मुंह में अंगूठा डाले चुस्-चुस्कर रही थी। नींद में उसका चेहरा और भी मासूम लग रहा था। उसे देखकर मुझे जीजी के रजतांशु का स्मरण हो आया—वह भी इतना ही बड़ा हो गया है। उसके भी दांत उगे होंगे। संगमरमरी चिट्टे मुंह में अंगुली रखने से काटता भी होगा अब।

मन्दिर देखकर लौटते हुए रूपम के लिए एक जोड़ी चप्पल मैंने खरीद दी। शायद इसीलिए चलते-चलते शर्मीला-सा रूपम मुखर हो आया। कहता है कि वह शाम को पढ़ने नहीं जाता, इन्हीं सज्जन की अपंग बीवी को पढ़ाने जाता है। कालिज़ की फ़ीस चल जाती है।

लौटकर बाहर वाले कमरे में घुसते ही पाया कि मेज पर चढ़ा शान्तनु मुन्ने को पीट रहा है, "ला जामुन मुझे दे। नहीं तो नहीं दूंगा तुझे लट्टू।"

मुझे देखते ही वह सहमकर ठिठक पड़ता है और मुन्ना डर के मारे कुर्सी पर बिखरी धुली-साड़ी से हाथ-मुंह पोंछकर भाग पड़ता है। आम-पापड़ और जामुनों के मैले चिपचिपे दाग ? मन हुआ पकड़कर दनादन तमाचे जड़ दूं।

"सुनो, छुटकी कहां है ?" चाचा जी आ गए हैं शायद।

"रूपम ले गया घुमाने। आती होगी। क्यों ? यह चिट्ठी किस की है ?" चाची पास आकर पूछती हैं।

"समधी आ रहे हैं परसों। कुन्नो भी"।

"कैसे ?"

"मुकद्दमे की कोई तारीख है ! कुछ दिन रहेंगे। सावन भी है। कुन्नो को छोड़ जाएंगे। तुम फालतू खर्चा कम कर डालो अब।" उनका स्वर बेहद ठण्डा है।

"कम क्या करूं ? पहले ही ऐसी कौन रईसी है।"

"तो ऐसा करो, छुटकी जाना चाहे तो जाने दो। कल उसका लास्ट···"

"क्या कहते हो ? इतने बरसों में पहली बार आई है। उसे रोकूंगी क्यों नहीं। कल सब बच्चों को सनीमा ले गई। ढेर सारे फल-मिठाई दिलाए। दद्दा ने जान लिया हमारे यहां आई थीं तो···।" चाची बिफरने लगीं।

"तो लाओ मुझे ही दे डालो माहुर। दो महीने से वेतन रुका है। मुझमें इतनी ताकत···।"

"चांदी की छागल रखी है। उसी का कर दो कुछ। दुखियाते क्यों हो।" वह नरम पड़ने लगीं।

कुर्सी पर बैठे-बैठे सब सुनती हूं। मम्मी पर गुस्सा होती हूं। क्यों कहा था मुझे वहां ठहरने को ? ऐसा होता है अपना घर···कहीं ऐसा होता है ?

"कश्मीर-मेल कितने बजे छूटती है चाची जी ?"

"क्यों बेटा ? जाने की ऐसी क्या जल्दी है ? तुम तो कह रही थीं अभी तुम्हारी छुट्टियां बाकी हैं ?"

"वे कैंसल करवानी होंगी चाचा जी ! मेरे कुछ स्टूडेन्ट्स के प्रैक्टिकल्स अभी बाकी हैं। छुट्टी पर रही तो उन्हें बेकार परेशानी होगी।" मेरा साफ झूठ बोलना उनके चेहरे पर एक व्यापक सन्तोष बिखरा गया है।

अन्दर जाकर अटैची लगाने लगती हूं। तेरह बड़ी-बड़ी किताबों का बण्डल, दस दिन में पचास रुपये दिन के हिसाब से मिला पांच सौ रुपये का चैक, शापिंग की चीजें समेटते-समेटते लगा पच्चीस साल पहले चाची की गोद में पायी आत्मीयता, एक अजीब-से असहायपन और अपरिचय के टुकड़ों में बदलकर हवा में लटक उठी है।

नीचे टैक्सी का हार्न दो बार बजकर चुप हो चुका है। रोशनी ने एक बार इधर-उधर सफाई से ताका। उसकी आंखें डबडबाई हुई हैं।

"छुटकी बेटा, इतने बरसों में अकस्मात आईं···कुछ दिन और रहतीं···पर क्या करें तुम्हारा भी सरकारी काम है।" धोती के पल्लू से कुछ खोल कर चाची ने धीरे से मुझे पकड़ा दिया।

"न-न, रखिए।" मना करती हूं।

दो-दो के तीन नोट हैं।

ट्रेन छूटने में दस मिनट बाकी हैं। मैंने अखबार खरीदकर सीट पर बिछा लिया है। सामने की सीट पर बड़ी-बड़ी मूंछों वाले तिलकधारी सज्जन गीला

अंगोछा निचोड़कर 'जै माता दी···हरि ओम हरि ओम' कहते हुए बार-बार मुंह पोंछ रहे हैं।

ठेले वाले से कुछ फल खरीदकर चाचा जी लिफाफा मुझे दे देते हैं। मेरे सामने पापा का चित्र घूम जाता है—ऊंचे, लम्बे, सांवले, रोबीले गुस्सैल पापा का।

एक यह हैं और एक वह।

गाड़ी रेंगती हुई प्लेटफार्म छोड़ने लगती है। चाचा जी खिड़की पर उभरी नसों वाला कांपता हाथ रखे साथ-साथ घिसटने लगते हैं। मुझे लगा कि वह शायद कुछ कहना चाहते हैं।

"पहुंचने पर तार देना बेटा! तेरे लिए कुछ भी तो न कर सके। दद्दा ने हमारे लिए क्या-क्या नहीं किया। उन्हें मत बतलाना कि वहां गई थी। नहीं तो वे क्या सोचेंगे···?"

उनका गला भर आया है।

पहिए धीरे-धीरे-धीरे आगे खिसक रहे हैं।

चाचा जी का हाथ सहसा नीचे गिर गया है। और मैं जल्दी से आंखों के आगे अखबार लगा लेती हूं।

मेरी आंखों में क्यों गीला-सा धुआं भर गया है? मुझे क्यों कुछ नहीं सूझ रहा है? केवल दूर कहीं पहियों की खुट-खुट आवाज़ आ रही है।

लगता है—प्लेटफार्म कहीं पीछे छूट गया है।

('साप्ताहिक हिन्दुस्तान' से साभार)

कहीं बहुत दूर

□ अलंकार

सीढ़ियां उतरते रीता ने एक बार सोचा कि चौकीदार को बताकर यहीं विजिटर्स रूम के सोफे पर सो जाए। सुबह उठकर चली जाएगी। दोबारा सोचने पर उसने यहां सोने का विचार दिमाग से निकाल दिया। एक तो बज ही चुका है। अब इतना थककर सोने के बाद वह सात के पहले तो उठ नहीं पाएगी। आफिस का काम तो सुबह पौने छह बजे ही शुरू हो जाएगा। तब किसी से अपना चेहरा कैसे छुपा पाएगी? सुबह सोकर उठने पर उसका चेहरा बहुत भद्दा हो जाता है। सोने से उसके चेहरे पर ताज़गी की जगह थकावट की लहरें उभर आती हैं। लगता है किसी ने सरसों का तेल मल दिया हो। अब तो मुंह धोए बिना वह भी अपना चेहरा शीशे में नहीं देखती।

आज सचमुच वह बहुत थक चुकी है। डबल शिफ्ट करने के बाद, उसे लगता है, किसी ने उसका दिमाग निकाल दिया हो। पांच बजे शाम मेहरा की एमरजेंसी लीव आई थी···उसकी पत्नी की तबीयत अचानक खराब हो गई है और वह उसे लेकर अस्पताल जा रहा है। नानसेंस। मेहरा हमेशा ऐसे ही बहाने बना छुट्टी लेकर भाग जाता है। वह जानती है, मेहरा आज अवश्य अपनी पत्नी को लेकर 'धर्म-वीर' देखने गया होगा·· प्रकाश छुट्टी लेकर महीने से गांव गया है। दस दिन की छुट्टी लेकर गया था। इसके बाद फादर को हार्ट अटैक होना शुरू हो गया था और उसकी दस-दस दिन की दो बार एक्सटेंशन आ चुकी है। रीता पहले ही जानती थी कि प्रकाश गांव जाकर ऐसा ही कोई नाटक करेगा। उसी के कारण उसकी लीव कैन्सिल कर दी गई थी। रीता को मेहरा और प्रकाश दोनों पर एक साथ गुस्सा आने लगा। कितनी सफाई से झूठ बोल लेते हैं।

सड़क पर चलते एक आदमी सिगरेट का धुआं उसके पास आकर फेंकता हुआ खड़ा हो गया। वह तेजी से निकलकर सोचने लगी—उसे टी० ई० ओ० उमेश के साथ ही निकलना चाहिए था। बांद्रा के लिए वह चर्चगेट से लोकल पर ही जाता है, और उसी के सामने से ही रीता को बन-थ्री-सेवन पकड़कर नेह्रौ नगर पहुंचना होता है। दस के बाद तो नेह्रौ नगर की बसें बन्द कर दी जाती हैं। इस

समय आर० सी० चर्च से पैदल ही नेह्वी नगर पहुंचना पड़ता है। रास्ते में घुप्प अंधेरा होने के कारण वह सांस रोक-रोककर बड़ी मुश्किल से अपने फ्लैट में पहुंचती है। उमेश के साथ निकलना उसने सिर्फ इसलिए टाल दिया था कि रास्ते में वह बहुत बोर करता है। कहेगा, "पारसी लड़कियां सिर्फ देखने में अच्छी लगती हैं। शादी तो उनसे हरगिज नहीं करनी चाहिए। सभी लड़कियां एक जैसी होती हैं, यह मैं नहीं कहता पर अपनी कैटी तो कुछ काम की नहीं। उसे हर काम के लिए नौकर चाहिए और अब तुम्हीं बताओ रीता—मैं आल इण्डिया रेडियो का ट्रांसमिशन एग्जीक्यूटिव आफीसर कहां तक इस मामले में उसकी मदद कर सकता हूं। हम ठहरे पहाड़ी लोग—अब हो भी क्या सकता है? पांच साल हो गए शादी को पर एक बार ससुराल जाने को राजी नहीं। आखिर तुम्हीं बताओ, घर वालों के भी कुछ सेण्टीमेण्ट्स होते हैं कि नहीं···और वह हर बात का उत्तर न देकर सिर्फ गर्दन हिलाती रहती है। न हां में, न न में, अब तो मैं सभी दोस्तों को यही राय देता हूं कि नौकरी चाहे कहीं करो पर शादी हमेशा अपने गांव में करो। हम ठहरे ट्रांसफर वाले लोग। पत्नी बाहर की हो तो बच्चे किसी भी क्षेत्र की भाषा नहीं सीख पाते। मैं कहना चाहता हूं कि···।"

बस का इन्तजार करते रीता सोचने लगी कि अब वह रोज ही 'टाइम्स आफ इण्डिया' का 'एकमोडेशन अवेलेबल' कालम पढ़ा करेगी। चर्च गेट के आसपास ही कहीं पेइंग गेस्ट के रूप मे उसे रहना चाहिए। चाहे उसके लिए सौ-डेढ़ सौ उसे अधिक ही देना पड़े। शाली ने खामख्वाह नेह्वी नगर फंसा दिया। स्वयं तो पूरे पांच बजे टाइप-राइटर से उठकर भाग जाती है। उसे पता नहीं था कि एनाउंसर के लिए कोई भी फिक्स टाइम नहीं होता। हर हफ्ते ड्यूटी की रिपोर्ट साप्ताहिक भविष्य की तरह सामने आ जाती है। यही उसके हफ्ते का टाइम टेबल होता है।

इस समय तो बसों की सर्विस भी कम कर दी जाती है। कहीं ऐसा तो नहीं कि चर्च के लिए लास्ट बस चली गई हो और उसे वापस रेडियो स्टेशन में ही जाकर सोना पड़े। चर्चगेट से निकलकर कुछ लोग आसपास खड़े थे जिससे उसे लगा कि लास्ट बस अभी आएगी।

कई लोग कारों को अंगूठा दिखाकर लिफ्ट मिलने की आशा कर रहे थे पर कोई भी कार रुक नहीं रही थी। वह तो अब कभी भी लिफ्ट मांगने की हिम्मत नहीं कर सकती। एक बार उससे यह गलती हो गई थी। उस दिन वह अकेली बस स्टाप पर खड़ी थी कि एक कार उसके पास रुकी। एक प्रौढ़ किस्म के व्यक्ति ने भीतर की लाइट जलाकर उससे पूछा, "आपको कहां जाना है?"

"नेह्वी नगर।"

"प्लीज कम; आय एम गोइंग एट द सेम प्लेस" इसके साथ ही उसने दरवाजा खोल दिया था।

रीता के दिमाग को झटका तब लगा जब कार ओबरॉय की ओर न मुड़कर मैरीन ड्राइव की ओर मुड़ने लगी—जब तक उसका हाथ रीता के गले तक पहुंचता, उसने दरवाजा खोल दिया था। कार चीख मारते हुए सड़क के किनारे रुकी। तब वह वहां से पैदल ही भागती हुई पसीने से तर-बतर होकर घर पहुंच पाई थी। ऐसे ही एक रात को टैक्सी में भी हादसा हो गया था—और उसने टैक्सी पर रात को अकेले न चढ़ने की कसम खा ली थी।

उसने देखा, सामने से आर० सी० चर्च की बस आ रही थी। रुकने पर रीता झट से अन्दर जाकर बैंठ गई। एक आदमी आगे सीटें खाली होने के बावजूद साथ आकर बैठ गया था। देखकर लगता था, पिये हुए है। रीता खिड़की से बाहर देखने लगी।

उसे याद आया आज दिल्ली से शास्त्रीय संगीत सम्मेलन का विशेष कार्यक्रम रिले हो रहा था। वहां से सी० डी० होने के बाद भी वह किन्हीं विचारों में खोई चुपचाप बैठी रही थी। तभी उमेश भागता हुआ आया था और उसने झट से होश मे आकर अन्तिम सभा की समाप्ति की घोषणा की थी। पता नहीं क्यों शास्त्रीय संगीत में उसकी दिलचस्पी नहीं बन पाती और यह कार्यक्रम होते भी कितने लंबे हैं। अब आदमी सोचे भी न तो क्या करे।

उसने देखा साथ वाला आदमी उसकी ओर बढ़ता ही चला आ रहा है। रीता ने उसे घूरकर देखा तो वह अपने आप परे लुढ़क गया। 'ब्लडी रासकल्स।' रीता ने मन-ही-मन उसे गाली दी। ''इन सबको अजायब घरों में बंद कर देना चाहिए। रात के समय पता नहीं कैसे सब की नजरें उल्लुओं जैसी हो जाती हैं।''

बस के आर० सी० चर्च पहुंचने पर दो-तीन लोग ही रह गये थे। रीता ने बीच के रास्ते से आफीसर्स क्वार्टर्स की ओर चलना शुरू कर दिया। ''छोटे शहरों और बड़े शहरों में कितना अन्तर होता है। अपने शहर में इस समय अकेले चलना—इम्पासीबल।''

सामने से कोई यूनिफार्म में चला आ रहा था। वह उसे देखते हुए आगे निकल गया। यदि उससे इस समय पूछ लेता कि वह कहां जा रही है, तो घबरा कर उल्टा-सीधा उत्तर उसके मुंह से निकल जाता। स्वयं तो फंसती ही, बेचारे मास्टर चीफ मि० वर्मा को भी फंसवाती। उसे ऐन मौके पर कहां याद रहता कि पूछने पर वह कहेगी—वह मि० वर्मा की वाइफ की सिस्टर है यानि मास्टर चीफ की सिस्टर-इन-ला।

उसे याद आया अपने शहर में जब कभी उसकी नाइट ड्यूटी होती, तब भइया या डैडी उसे लेने आ जाते थे। घर के पास ही तो था स्टेशन। यहां कौन है जो लेने आयेगा? रीता की आंखों में आंसू आ गए। कितना बड़ा शहर है यह बम्बई। जब नयी-नयी आई थी तो कितना घबरा गई थी जैसे किसी ने तालाब की मछली

को समुद्र में फेंक दिया हो। उसका बस चलता तो भाग जाती यह नौकरी छोड़ कर। पर यह नौकरी वह कैसे छोड़ सकती है। आजकल नौकरियां मिलती ही कहां हैं? और वह भी सेण्ट्रल डिपार्टमेण्टस् में···हां···आज ही सुधाकर पाण्डे बता रहे थे कि सुना है सभी एम्पलाइज को अपने-अपने क्षेत्र में ट्रांसफर करने की प्लानिंग है सरकार की। कितना अच्छा हो यदि ऐसा हो जाए। वहां तो सभी हैं और यहां···

उसने बेल बजाई। रमिया ने दरवाज़ा खोला तो ऊंघ रही थी। दरवाज़ा बन्द करते हुए पूछने लगी, "मेम साहब खाना गर्म कर दूं?"

"तू सो जा, मैं खुद गर्म कर लूंगी।"

रमिया फिर अपने उसी जमीन पर पड़े बिस्तर पर खुर्राटे भरने लगी। "कितना अन्तर है रमिया और उसमें। कितनी जल्दी उठ और सो जाते हैं यह लोग। एक ही बार बेल बजाई तो उठ गई और अब···" एक वह है कि कितने समय तक करवटें ही बदलती रहती है, और सुबह उठने पर उसका सर चकरा रहा होता है। जब कभी मार्निंग ड्यूटी हो तो साढ़े पांच से पहले घर से भागना पड़ता है। स्टेशन की वैगन भी हमेशा कहां आती है, लेने के लिए। वैगन चाहे आए न आए, मंगल ध्वनि के साथ उसे पहली सभा ठीक साढ़े छः बजे शुरू करनी ही होती है। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता कि उसे अन्तिम सभा की समाप्ति और पहली सभा का आरम्भ दोनों ही करने पड़ते हैं। तब उसका जी चाहता है यहां से भागकर वह कहीं चली जाए। पर उसका ऐसा सोचना अधिक दूर तक न जा वहीं से वापस लौट आता है।

कल उसकी ड्यूटी तीन बजे शुरू होगी। इसलिए वह सुबह दस बजे तक सोयेगी। उसका मन हुआ कि अब वह हाथ-मुंह धोकर खाना गर्म करके खा ले। भूख से उसका सर काफी भारी हो गया था। आज तो बोल-बोलकर उसका गला भी थक गया था। लोग समझते हैं एनाउंसमेंट का काम कितना आसान होता है। उसकी फ्रेंड्स भी कहती थीं—"यह भी कोई काम है। ··रिकार्ड मशीन के ऊपर रखा और कहा—अब आप लता-किशोर का गाया फिलम 'आराधना' का गीत सुनेंगे···बस, इतना-सा काम। इसे तो कोई भी कर ले। उन्हें क्या पता कितना एलर्ट रहना पड़ता है। घड़ी के साथ-साथ सेकेण्डों का हिसाब रखते बोलना पड़ता है। न एक सेकेण्ड इधर-न-उधर। थोड़ी भी गल्ती हो जाए तो···

खाना खाने के बाद जब रीता कपड़े बदलकर बिस्तर पर लेटी तो नींद का नामोनिशान न था। कभी देर से और कभी जल्दी लेटने से कोई भी आदत उसकी नहीं बन पाई है। वह सामने के बन्द दरवाजे की ओर घूरने लगी जिसमें मास्टर चीफ और उसकी पत्नी सोए हुए थे। कितना सुखी है इन लोगों का जीवन भी। सारा दिन मेहनत कर शाम को घर लौटना···पत्नी और बच्चे वर्मा साहब के

इन्तजार में बार-बार घंटी की ओर देखते हैं···अब बजी···अब बजी···यही तो होता है सुख···पारिवारिक सुख। सोचने से क्या फायदा···सबकी अपनी-अपनी खुशियां हैं, अपने-अपने गम हैं। मेरे हिस्से में जो आया है, मुझे मिल रहा है।

अचानक ही रीता हड़बड़ा कर उठ बैठी। आज की डाक तो उसने देखी ही नहीं। देखा टेबुल पर दो पत्र पड़े थे। देखकर ही पहचान गई, एक डैडी का है और दूसरा सूरज ने लिखा है।

पत्र हाथ में पकड़कर वह सोचने लगी कि उन्हें अभी पढ़ लेना चाहिए या सुबह···उसने महसूस किया आजकल वह सोचने बहुत लगी है। उसे इतना नहीं सोचना चाहिए।

रीता अब इस उलझन में फंस चुकी थी कि पहले कौन-सा पत्र पढ़े। आखिर उसने सूरज का पत्र फाड़ा और पढ़ने लगी। लिखा था—

रीता,

मैंने तुम्हें तीन पत्र लिखे परन्तु तुमने किसी एक का भी उत्तर नहीं दिया। (क्या लिखती सूरज। यह कि मेरा मन बम्बई में बिलकुल नहीं लगता, हर समय यहां से भाग जाने का मन होता है। पर क्या इन्सान वह कर पाता है, जो चाहता है। यदि ऐसा होता, तो क्या आज मैं तुम्हारे पास न होती।) शायद मुझ से नाराज हो। (नाराज क्यों होऊंगी भला तुमसे? तुमने तो मेरी हमेशा सहायता की है। तुम क्या समझते हो मैं सब भूल गई हूं। मेरी ट्रांसफर रुकवाना क्या तुम्हारे बस में था।) तुम्हें बम्बई गये चार महीने ही हुए हैं और तुम मुझे भूल गई हो। (तुम्हें यह चार महीने लग रहे हैं सूरज। मुझे तो यह चार साल, चार जन्म लग रहे हैं।) क्या वहां बहुत से मित्र बना लिये हैं? (मित्र क्या इतनी आसानी से बन जाते हैं। क्या परिचय को ही मित्रता कहते हैं?)

मैंने तुम्हें पिछले पत्रों में भी लिखा था कि तुम नौकरी छोड़कर वापस चली आओ। घर वाले शादी के लिए तभी राजी होंगे यदि तुम नौकरी छोड़ दो। (बस, इतनी छोटी बात सुननी शेष रह गई थी तुमसे। सिर्फ नौकरी बीच में दीवार खड़ी दीखती है। या···तुम तो कहा करते थे···) आखिर तुम्हें नौकरी से इतना मोह कैसे हो गया है? सिर्फ कुछ रुपयों के लिए तुम नौकरी नहीं छोड़ना चाहतीं। यदि तुमने कुछ और ही फैसला कर लिया है तो मुझे लिख दो ताकि मैं भी अपने लिए कोई फैसला कर सकूं। (फैसला तो तुमने स्वयं ही कर लिया है सूरज। अब क्यों यह सब लिखकर बच निकलना चाहते हो। मैंने कब रोका था तुम्हें··) यह अपनी ओर से तुम्हें अन्तिम पत्र लिख रहा हूं। यदि उत्तर न मिला तो समझूंगा—जो देखा था, वो एक सपना था, पहले पहर का सपना। (यही तो अन्तर था हममें। तुम सपने को देखते थे, उसे छूते थे पर तुमने उसे महसूस नहीं किया।)

अब किस सम्बोधन का प्रयोग करूं। (क्यों सूरज अब तुम्हें सम्बोधन भी तलाश करने होंगे। तुम इतनी जल्दी ही सब भूल गए। उस रीता को भूल गए··· उस रीता को भूल गए जिसने तुम्हारे लिए···तुम्हारे लिए कभी किसी की परवाह न की। सब की बातें सुनीं, सहीं, पर तुमसे मुख न मोड़ा। तुम क्या जानो सूरज··· तुम पुरुष हो न···स्त्री के लिए यह सब सहना कितना कष्टदायक होता है, यह तुम कभी नहीं जान सकते। सिर्फ मां-बाप के कहने पर तुम अभी शादी कर लेना चाहते हो या तुम्हारे दिमाग में यह बात आ चुकी है कि बम्बई जैसे शहर में न जाने कितने लोगों से मिलती होऊंगी···घूमती होऊंगी···और न जाने···सूरज, यदि तुमने ऐसा सोचा होगा तो यह तुम्हारी नीचता होगी, तुम्हारा छोटापन होगा। और तुम क्यों मेरे जीवन से नीच बनकर निकलना चाहते हो—आखिर क्यों?) यहीं समाप्त करता हूं। (समाप्त करने में तुमने बहुत देर कर दी सूरज, बहुत देर।)

—सूरज

उनने दूसरा पत्र खोला। लिखा था—

बेटी रीता,

बहुत-बहुत प्यार!

तुम्हें बेटी नहीं बेटा कहना चाहिए। आशा है तुम अच्छी होवोगी। तुम पत्र बहुत कम लिखती हो। और लिखती भी हो तो इतना छोटा कि टेलिग्राम मिलने का आभास होता है। हफ्ते में एक पत्र अवश्य लिखा करो। शार्टवेव पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में तुम्हारी आवाज़ सुनकर बहुत खुशी होती है।

वहां तो तुम खूब मज़े में ही होवोगी। इतना बड़ा और खूबसूरत शहर। सुना है वहां पूरा साल एक-सा मौसम रहता है। कभी वहां आने का कार्यक्रम बनाऊंगा, तुम्हारी मां के साथ। उसे तो कहीं घुमा ही नहीं पाया कभी। बस, तुम्हारे बड़े भइया को कहीं नौकरी मिल जाए···

तुम्हारे भेजे हुए चार सौ रुपये हर महीने मिल जाते हैं। मुन्ने की पढ़ाई का खर्चा दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा है। तुम्हारी तनख्वाह कब बढ़ने वाली है? जब तक तुम्हारी तनख्वाह नहीं बढ़ती, हम इतने में ही गुजारा कर लिया करेंगे। तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करना।

तुम्हारे भइया को आशा है कि जल्दी ही कहीं नौकरी मिल जाएगी। उसके बाद वह अपनी शादी के लिए पैसा इकट्ठा करने के प्लान बना रहा है।

तुम्हारी मां अब अधिक बीमार रहने लगी है। अस्पताल के डॉक्टर को दिखाया था। वे फल आदि खाने के लिए कहते हैं। उनके कहने से क्या होता है।

उन लोगों को क्या पता कि चार सौ रुपये से पूरा महीना कैसे काटा जाता है ?

मैं ठीक ही हूं। तुम्हारी बड़ी बहन की शादी में जिस धनीराम सेठ से पैसा उधार लिया था, मैं आजकल उसी की दुकान पर काम करता हूं। दो साल के बाद हमारा लेना-देना कुछ भी नहीं रहेगा। अच्छा ही है—समय भी निकल जाता है और मन भी और हो जाता है। ऐसे तो उतना रुपया लौटाते, जाने कितना सूद ही हो जाता।

तुम पत्र लिखती रहा करो। पीछे की चिन्ता न कर अपना काम खूब मेहनत से करना। वहां तो नये-नये लोगों से तुम्हारा परिचय हो रहा होगा। खूब घूमती होवोगी।

शेष अगले पत्र के लिए। बच्चों की तरफ से नमस्ते तथा बड़ों की तरफ से प्यार।

—तुम्हारा पिता

दीनानाथ।

रीता ने एक लम्बी हुंकारी भरी और घड़ी की तरफ देखने लगी—तीन। यानी न यह लगे कि रात है और न यह लगे कि सुबह है। बस, ठीक यही स्थिति हो गई है उसकी भी। कहीं की भी नहीं रह गई है वह। इसके साथ ही वह बिस्तर पर लेटकर खूब फूट-फूटकर रोने लगी।

रीता ने सुना कहीं बहुत दूर से कुत्तों के रोने की आवाज़ें भी आ रही थीं।

माँ

□ क्षेमलता वखलू

"खतजी, आज पोंछा रहने दो, राहती स्वयं कर लेगी ।"

"नहीं, बीबी जी । अभी तो बहुत समय है । अभी से काम छोड़ दूंगी तो फिर घर का निर्वाह कैसे होगा ?"

"क्यों, करीम काम पर नहीं जाता है क्या ?"

"जाता तो है, पर उसकी कमाई से इतने बड़े घर का गुजारा कैसे होगा ? मैं काम न करूं तो सोचिए भला, उसके डेढ़ सौ में क्या होगा ? इधर इतनी महंगाई है ।"

"सुनो खतजी, मेरी मान लो । अब की बार मैं तुम्हारी यह दलीलें सुनना नहीं चाहती । कितनी बार समझाया कि अब यह सब छोड़ दो, पर तुम हो कि हर समय आनाकानी करती रहती हो । यदि मेरी मान जातीं तो आज यह नौबत नहीं आई होती । तुम्हारा रक्तचाप बहुत बढ़ गया है, इधर तुम्हारा स्वास्थ्य भी दिन पर दिन गिरता जा रहा है । इस पर भी तुम बाज नहीं आती हो । क्या तुम्हें अपने बच्चों पर, अपने आप पर, सारे परिवार पर दया नहीं आती है ? रहा करीम, वह तो निरा बुद्धू है ।"

"कोई बात भी तो हो जो दया आये । हां, डॉक्टर बीबी, आपकी बात ही दूसरी है । आप प्रभु को नहीं मानती हैं, उसकी लीला में विश्वास नहीं रखती हैं । रही बच्चा बन्द करने की बात, वह मैं कयामत तक नहीं करूंगी । खुदा की खुदाई में इंसानों की दखलंदाजी, तौबा ! फिर हमारे दीन में यह पाप ही नहीं, महापाप है । और फिर हम किसी के घर भीख तो नहीं मांगने जाते । मेहनत-मज़दूरी करके अपना पेट पालते हैं । बेशक हमारे कितने ही बच्चे क्यों न हों, औरों को इससे क्या मतलब ? हम गरीब हैं न, इसीलिए यह बातें सुननी पड़ती हैं ।"

खतजी का पारा चढ़ चुका था । यह पहला अवसर न था, जब मालकिन के संग इस प्रसंग को लेकर उसकी तू-तू, मैं-मैं हो गई थी ।

मालकिन स्वयं डॉक्टर थी । हजारों को आये दिन देखती थी । स्त्रियों की बुरी हालत, बच्चों का बुरा हाल । उस पर भी कुत्तों के पिल्लों की तरह बच्चे जने

जा रही थीं। कई नालियों पर पड़े रहते, कई सड़कों पर पलते, कई पटरियों पर, नंगे चीथड़ों में लिपटे हुए···यह मनुष्य रूपी कीड़े रेंगते हुए दिखाई देते। डॉक्टर सुधा का मन ग्लानि से भर जाता। कितनों को मजबूरन उसने ट्यूबकटॉमी करवाई थी, कितनों की गालियां सुनी थीं उसने। कोई धर्म की आड़ लेता, तो कोई दीन की। उसे बेहद दुख होता और मन में एक ही प्रश्न उठता—कि आखिर यह अंधविश्वास कब और कैसे समाप्त होगा?

खतजी का पति, करीम, सुधा के घर में माली था। और भी कहीं दो-तीन घंटे काम कर लेता था। उन्हीं की गौशाला के ऊपर एक टूटा-फूटा कमरा था जिसमें करीम और खतजी की गृहस्थी थी। यह कमरा इनका संसार था, यह इनकी छोटी-सी दुनिया थी। यही रसोईघर था, यही उठने-बैठने का कमरा और यहीं पर वह सोते भी थे। इनके संसार का आगाज़ भी यहीं था और अंजाम भी यहीं था। यहीं बच्चे भी पलते और एक के बाद एक का जन्म भी होता। इस तरह इनका संसार संसार के अन्य प्राणियों से अलग-थलग था।

करीम दीन-धर्म की बातों से अनभिज्ञ था। उसकी पत्नी को भी इन बातों से सरोकार न था। पर अंधविश्वास, अज्ञानता और जहालत ही उनका धर्म बन चुका था। जो वस्तु उन्हें भाती उसके लिए अपने धर्म की आड़ ले लेते और उसे पाने में पीछे न रहते। खतजी काफी स्वाभिमानी स्त्री थी। चाहे वह भूखों मरती पर बाहर से कभी इस बात का जिक्र न करती। यह नाटे कद की स्त्री पल में माशा, पल में तोला होती। और जो सामने होता, उसी पर बरस पड़ती। अपने बच्चों की बराबरी मोहल्ले के अमीर घरों के संग करती। बेशक वह निर्धन थे, तो इससे वह और बच्चों से कम तो न थे। ऐसा वह सोचती थी।

यदि कभी कोई उसे बच्चे पैदा करने पर रोक लगाने के लिए कहता तो दोनों मियां-बीवी उनकी यूं मरम्मत करते, उन्हें जोर-जोर से कुछ ऐसे गालियां देते कि सारे मोहल्ले को छठी का दूध याद आ जाता। सब लोग इस कर्कश, फूहड़ दम्पति को इस मुहल्ले से हटाना चाहते थे। परन्तु क्योंकि खतजी सारे मोहल्ले वालों का काम करती, उनके कपड़े धोती, बर्तन साफ करती, चावल चुन लेती, इसीलिए लोग मन मार कर रह जाते।

इधर निर्धनता के कारण, कभी-कभी खतजी को अपना जीवन भार-सा भी लगने लगता था। घर में प्रतिदिन हल्ला मचा रहता, आये दिन कभी इस वस्तु की कमी तो कभी उस वस्तु की कमी लगी रहती। कभी बच्चे के कपड़े बनाने का मसला तो कभी बिस्तरा बनाने की समस्या खड़ी हो जाती। यूं तो एक बड़ी-सी रजाई में सब इकट्ठे सो जाते थे। छोटे-छोटे बच्चे बीच में, मां-बाप तथा बड़े बच्चे किनारों पर सो जाते और यूं उस एक रजाई का बुरा हाल हो रहा था। यही हाल खाने का भी था। कभी चावल कम पड़ जाते, तो कभी तेल नहीं होता। कभी

लकड़ी कम पड़ती, तो कभी चाय की पत्ती नहीं होती। त्योहार पर भी भारी-भारी से कपड़े आते। खतजी प्रायः अपने छोटे-छोटे बच्चों को लेकर काम पर जाती। एक तो काम का काम होता दूसरे उनका पेट भी पलता। कभी-कभी बच्चों को सर्दी के मारे ठिठुरते, चीथड़ों में देख, किसी-किसी को दया आ जाती। यूं कोई उन बच्चों के लिए जूते, कपड़े देता तो कोई चावल, आटा दे देता। इस तरह इनके जीवन की जीर्ण गाड़ी जैसे-तैसे चलती थी और वह जीवित रहने का नाटक किए जा रहे थे।

इधर सर्दियां आतीं, बर्फ गिरती। इस मौसम में मनुष्य जितना खाये-पिये, ओढ़े-पहने कम है। परन्तु इसी ठंड में खतजी के बच्चे नंगे पैर, नंगे सिर, बर्फ पर यूं घूमते जैसे यह बर्फ न होकर फूल हों। प्रभु की माया का भी अन्त नहीं। एक कश्मीरी कहावत सही है कि—"वन च्यन दारयन कुदरतुक संग।" यानि वन-वृक्षों को प्रभु का साया।

गौशाला के ऊपर होने के कारण यह कमरा सर्दियों के लिए बहुत अच्छा तथा गर्म था। गौशाला की ही छत इस कमरे का फर्श था। वैसे करीम ने गौशाला की दो छोटी खिड़कियां अपने कमरे में खोली थीं। इस प्रकार गउओं की गर्म सांसों से कमरा खूब गर्म रहता। यह तरकीब नयी न थी। करीम बचपन से इस तरह के जीवन का आदी था, उसके गांव में सब लोग सर्दियों से बचने के लिए इसी तरह के उपाय किया करते थे।

गौशाला की बदबू, गोबर की सड़ांध इनके रोम-रोम में घर कर चुकी थी। इनके कपड़े, इनकी हर वस्तु से पता चलता कि यह खतजी की होगी। इसी प्रकार इनके छोटे से घर-संसार का क्रम चलता रहा। शुतुर्मुर्ग की तरह ही इन्हें भी अपने अतिरिक्त बाहर की दुनिया दृष्टिगोचर न होती थी।

एक दिन जब और दिनों की तरह खतजी अपना कार्य समाप्त कर घर लौटी तो उसे लगा कि उसे दर्द हो रहा है। आते ही पति से बोली—

"करीम, दाई को बुला लाओ, मुझे दर्द हो रहा है।"

"क्यों, डॉक्टरनी घर में नहीं है? उसी को बुला के लाता हूं।"

"नहीं-नहीं, ऐसा मत करना। वह तो बस एक ही रट लगाये बैठी है कि बच्चा बन्द कर लो।" खतजी दर्द के मारे दांत पीस रही थी।

"क्या हमारे बच्चे उनका दिया खाते हैं? यह बड़े लोग स्वयं को समझते क्या हैं? लो, मैं अभी फजी को बुलाए लाता हूं।" यह कहते हुए वह धीरे-धीरे उठा, लोई ओढ़ी और बाहर की ओर चल दिया।

करीम के जाते ही खतजी का दर्द बढ़ने लगा। वह कराह रही थी पर जैसे उसके बच्चों को उसका कराहना सुनाई न दे रहा था। सारे बच्चे कमरे में जोर का शोर मचा रहे थे। खेलते-खेलते बड़ा भाई छोटे भाइयों को पीट रहा था। एक

बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था और अपनी मां का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता हुआ सिसकियां भरते हुए कह रहा था—"देखो मां, अब्दुल मुझे जान से मार डालना चाहता है। मैंने कुछ भी नहीं कहा; फिर भी पीट रहा है।" इतनी देर में अब्दुल समीप आया, छोटे भाई के मुंह पर जोर का चांटा मारा। बोला, "हरामजादे, उल्लू के पट्ठे, मां से चुगली खाता है। चल बाहर, जरा तेरी हड्डी-पसली एक कर दूं।" इस तरह की बक-झक से खतजी उकता गई थी। इस समय दर्द के मारे उसे सब पर, स्वयं पर, संसार पर, बच्चों पर, अपनी निर्धनता पर और अपनी बेबसी पर क्रोध आ रहा था। इस समय वह असहाय थी, नहीं तो सबको कसकर झापड़ लगाती। इस समय जैसे उसे बच्चों के रोने-धोने से सरो-कार न था। वह दर्द के मारे बेचैन थी और कराह रही थी। मां का यूं कराहना बच्चों के लिए नयी बात न थी। वह समझ गये थे कि उनके घर में, उनके कुटुम्ब में एक और बच्चे का आगमन हो रहा है। जैसे मां-बाप के लिए यह बात स्वाभाविक थी, इसी तरह बच्चों के लिए भी। दुःख केवल उस एक वर्ष के मासूम का था। जिसने अपनी मां का दूध तीन माह भी न पिया था। वह मां के सूखे स्तन चूसने का आदी हो गया था, पर अब वह सूखे स्तनों से भी वंचित हो रहा था। अब उन पर किसी और का अधिकार होगा। यह मासूम अपनी भुजाएं, फैलाये आ-ओ कर-कर के मां के पास जाना चाहता था। परन्तु आज उसे न जाने क्यों उसकी अपनी ही बहन मां के समीप जाने नहीं दे रही थी। उसकी मां इधर-उधर, टुकर-टुकर अपने नेत्र फैलाये, बच्चे की ओर देख रही थी, जैसे कहना चाहती थी, "बेटे, मैं आज असहाय हूं। तुझे गोद में ले न सकूंगी।" आज पहली बार उसे इस मासूम पर दया आ गई। उसका दर्द बढ़ रहा था और उसके नेत्र भीग रहे थे। अपनी बेटी को संकेत से अपने पास बुला-कर बोली, "फाता, जरा देख तेरा बाप फजी को लेकर आ तो नहीं रहा। आह ! मेरी जान निकल रही है।"

खतजी जानती थी कि फाता उसका कितना ध्यान रखती है। घर-गृहस्थी को देखती-भालती है। भाइयों, बहनों को संभालती है। उनको खिलाना, पिलाना तथा कपड़े धोना सब इसी के जिम्मे तो था। सो घर की ओर से खतजी बिल्कुल निश्चिन्त थी और वह फरागत की सांस भरने लगी।

फाता बाहर गई। उसकी गोद में उसका सबसे छोटा भाई था। छोटे भाई-बहन भी उसके पीछे हो लिये, शायद बड़ी बहन कुछ खाने को दे। दूर-दूर तक दृष्टि दौड़ाने पर भी फाता को कहीं कोई नजर न आया। दबे पांव लौट आई। देखा, मां की बुरी दशा हो रही थी। उसका मुंह सफेद फक पड़ गया था। वह दर्द के मारे बेसुध पड़ी थी। उसका शरीर पसीने से लथपथ था। बात करना भी कठिन हो रहा था। वह फटे-फटे नेत्रों से बेटी की ओर टुकर-टुकर देख रही थी। मां की भयानक दशा देखकर फाता रोने लगी। बहन को रोते देख, मुन्ना भी जोर-

शोर से रोने लगा। इनको रोते देख अन्य भाई-बहन भी रोने लगें। धीरे-धीरे झोंपड़े में कोहराम मच गया।

इतने में फजी आ गई। सब बच्चों को बाहर निकाला गया। खतजी के ऊपर से रज़ाई उठाई गई। बच्चा जन्म ले चुका था और सब कुछ रक्त के सागर में डूबा हुआ था। उसे हेमरेज हुई थी। जिसे रोकना दाई के लिए असम्भव था। दाई ने खतजी को अस्पताल ले जाने की सलाह दी। इधर खतजी समाप्त हो चुकी थी, पर उसकी सांस थी कि अभी भी चल रही थी। उसे अस्पताल तो ले जाया गया, पर रास्ते में ही उसने प्राण त्याग दिये थे और पंछी संसार के दुःखों से आज़ाद होकर कहीं दूर चला गया था।

सारे मोहल्ले में खतजी के मरने से सन्नाटा छाया रहा। पर सभी जानते थे कि उसका अन्त ऐसे ही होगा। सुधा ने भी यह बात सुनी तो दौड़ती हुई झोंपड़े के पास पहुंची। सीढ़ियां चढ़ने से पहले वह जरा रुकी। देखा—गौशाला का द्वार अधखुला था। अंधेरी कोठरी में उसे कुछ रेंगता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। उसके पैर ठिठके, वह चौंक गई। आगे बढ़ी—अधखुले द्वार को खटाक से खोला। देखा अंदर खतजी के छोटे-छोटे दो बच्चे थे। एक के सिर-माथे, मुंह को गाय प्यार से चाट रही थी जबकि दूसरा बच्चा उसके थनों से चिपट-कर दूध चूस रहा था। इस दृश्य से सुधा ठगी-सी खड़ी रह गई। उसने ऐसा दृश्य जीवन में पहले कभी न देखा था।

सुधा की आहट पर भी वह चौंके नहीं, जैसे उन मां-बेटों को संसार का गम न था, दुख न था, कोई सरोकार न था। एक मां मर चुकी थी, उसका स्थान दूसरी ने ले लिया था। संसार का क्रम चलता रहा। कौन आया, कौन गया, कौन जन्मा, कौन मरा, यह बातें वह मासूम और वह बेजुबान क्या जाने? वे मस्त थे अपने में ही, यही उनका घर-संसार था। सुधा की आंखें भर आईं, अश्रुधारा छल-छलकर बह चली। गहरी सांस, लम्बे-लम्बे डग भरते दुःख को अपने सीने में छिपाये वह अपने घर की ओर लौट चली।...

दण्ड

मोहन निराश

कोई मुझे सलीब बनाकर
मेरे ही अस्तित्व को चढ़ा गया उस पर।
मुझ सलीब से घृणा करने वाले, अरे ओ !
मैं मसीहा का क़ातिल नहीं।
समय के सलीब पर चढ़ाया गया
एक पैग़म्बर हूं स्वयं :
जिसे इसलिए सज़ा दी गई, कि
मैंने हर घृणा करने वाले को
बाहों का बन्धन दिया।

आंधी

भई, बला की आंधी चलती
बन्द करो तुम द्वार-खिड़कियां
और कहीं बैठो कोने में
सहम-दुबककर,
पलकें मूंदे,
दिल को थामे,
यह अभिशाप न जाने टूटा क्योंकर
भू पर ?

इस दरार से देखो
कैसी गति है इसका ?
छोटे पौधों, कुंज-लताओं, विटपों
की तो बात नहीं कुछ,
उन्मूलित यह किये जा रही हिमालयों को,
मेट रही कितनी गाथाएँ औ' समयों को,
शत-प्रलयों को
लेकर साथ बही जाती है।

किसका बस है इसको रोके,
इसको टोके ?
यह सारी भू उड़ जायेगी अभी, इसी क्षण
ऐसी गति से चलती है यह।
चलती
आंधी
अंधी क्रांति :
अब तक कौन हुआ पृथ्वी पर
जिसने आंधी बांधी हो ज़ंजीरों में ?

क्या डरना है ?
सहम-दुबककर कोने में
दृग मूंदे
रह-रहकर मरना है ?
यह छाती किस लिए मिली है ?
तुम साथी किस लिए मिले हो ?

प्रश्नों के प्रश्न

सुभाष भारद्वाज

शब्द ये
बहुत सिर पटकने पर भी
अपने मुख से
कुछ नहीं बोलते
मेरे बहुत बतियाने पर भी
अपनी इस चुप्पी का
रहस्य नहीं खोलते।
बैठ कर
मेरे प्रश्नों की सड़क पर
बस थूकते रहते हैं
हर क्षण
अपने अपने प्रश्न।

आज मैंने
कुछ शब्दों को
पकड़ लिया
और चाय की दुकान पर
पिला कर चाय
चाय-पाश में जकड़ लिया;
और फिर उनके सम्मुख
मेज़ पर
फेंक दिये ढेर सारे प्रश्न।
पर वे मेरे
सब के सब प्रश्नों को

पी गये चाय में घोल कर
दिया नहीं
मेरे
एक भी प्रश्न का उत्तर
मुंह खोलकर।
किन्तु कुछ-देर बाद
सहसा
शायद कुछ झेंप कर
अपनी निरुत्तरता से
फैंक कर
मेरे प्रश्नों के मुंह पर
अपना यह
मरियल सा उत्तर
चले गये
चाय की दुकान से बाहिर—

"हम शब्द
अब कुछ भी नहीं बोल सकते हैं
क्योंकि हमारा पाणिनि
किसी बार में
बहुत पीकर
बेहोश हो गया है।
और इस बीच
कुछ ढोंगी और पाखण्डी
वैय्याकरणी
नोच कर ले गये हैं
हमारे उपसर्ग और प्रत्यय,
छीन कर ले गये हैं
हमारे सर्वनाम और विशेषण
और हमारी क्रियाओं का
कर गये हैं
समूल नाश।

अतः
हमारे मूर्च्छित पाणिनि के
होश में आने तक
उपसर्ग और प्रत्यय रहित,
विशेषण और सर्वनाम हीन,
क्रिया-विहीन
अपाहिज और गिराहीन
हम शब्दों को
बन
तुम्हारे प्रश्नों के प्रश्न
एक एक करके नष्ट होना है
और अपना यह
पंगु शब्दत्व
अब इसी तरह खोना है।"

आदिपुरुष का दोष

जब से पैदा हुआ हूं
आज तक
मैंने कभी सूरज नहीं देखा
भले ही
रोज की तरह, आज भी
पीले रंग का
एक मोटा सा गुब्बारा
सामने वाली सीढ़ी से
लपका है
लेकिन यह भी निश्चित है
कि यह
मेरे घर के

ऊपर वाले आसमान को
फांदता हुआ
शीघ्र ही किसी दूसरी सीढ़ी से
फिसल जाएगा

पीले रंग के
इस मोटे गुब्बारे को
सूरज समझ लेना
मेरी एक मजबूरी है
एक पुरानी आदत है
जो मेरे बाप ने मुझे
जनमते ही ओढ़ाई थी।

नायक है
यह उसी कहानी का
जो कभी उसने
मुझसे
मेरी बालसुलभ
चंचलता छुड़वाने को
मेरे कानों में सुनाई थी।

लेकिन
इसमें कसूर
न तो मेरा है
न ही मरे बाप का
मेरे कुल के
किसी भी
बाप या वेटे का नहीं।

दोष है
तो मेरे वंश के
उस आदिपुरुष का
जिसने

पीले रंग के
इस मोटे से गुब्बारे
को देकर
एक बहुत बड़ा धोखा
अपनी आंखों में
टांक लिया था।

गलती से समझकर
इसको सूरज जिसने
घड़ कर
एक रोमांचक कहानी
अपने कानों में खोंस ली थी
और मधुपर्क से
करके इसका सत्कार
श्रद्धा की झोंक में आकर
इसे कह दिया था सूरज।

लेकिन
इस धरती पर
नये नये आये हुए
भोले-भाले उस
आदिपुरुष को भी
क्या था मालूम
कि उनकी
वह छोटी सी भूल
आने वाली
असंख्य पीढ़ियों से
छीन लेगी
सूरज को ढूंढने की क्षमता
हमेशा हमेशा के लिये उन्हें
असली सूरज से
वंचित कर जाएगी।

एक ध्वस्त होते हुए नगर की चीख

शशिशेखर तोषखानी

लावा ! लावा !! लावा !!!
लाल गुस्से में गुर्राता हुआ
अपनी पागल, अनियंत्रित गतियों की उत्तेजना में
मुझे दबोच लेता है
और मेरे भीतर एक ध्वस्त नगर
चीत्कार कर उठता है।
अपनी मृत्यु को
रोजनामचे के एक पृष्ठ से दूसरे पृष्ठ तक ढोता हुआ मैं—
चलता जाता हूं उस पुल की तलाश में
जो मुझे जीवित संदर्भों के भूगोल से जोड़ दे
लेकिन मेरी जेब में पड़ी कुतुबनुमा
हमेशा उन्हीं अंधेरों की ओर संकेत करती है
जहां एक ध्वस्त नगर
घायल जानवर-सा चीखता है।
मेरी पीड़ा को नारंगी-सा फांक-फांक करता हुआ
एक वृद्ध, दन्तहीन ययाति भाव
मुझसे विद्रोह की मुद्रा में ढला हुआ
मेरा चेहरा मांगता है
और बदले में अपना चेहरा मुझे देने को सहर्ष तैयार है
मेरी उंगलियों के पोरों पर
हारे हुए युद्धों की जलती संज्ञाएं रखी जाती हैं।
मेरे मुंह में अपनी ही हड्डी का ठंडा स्वाद।
अपने निर्वासन के इस कड़वे ध्रुवान्त पर
मैं फिर भी महसूस करता हूं

हरहराते हुए क्रुद्ध सागर के जीवित स्पर्श
मैं अब भी सवाल करना चाहता हूं—
मैं पूछना चाहता हूं
कि क्यों मुट्ठी भर-भरकर अर्थहीन स्थितियां आंखों में फेंक
तुम भाषा को अन्धा कर देना चाहते हो
(भाषा—जो मेरी पराजय और तुम्हारे छद्म की
एकमात्र साक्षी है)
मैं जानना चाहता हूं कि क्यों
नारे खुरचने और पोस्टर चिपकाने के लिए
तुमने मेरी आत्मा को मिट्टी की दीवार बना दिया है।
मैं वर्तमान शताब्दी के मुंह पर
शब्द-शब्द वह जहर थूक देना चाहता हूं
जो चेतना के स्तर-स्तर पर मेरी प्यास को दिया गया है।
मैं कहता हूं।
मेरी त्वचा के भीतर
एक सम्पूर्ण नगर ध्वस्त हो गया है
मगर बाहर कोई विस्फोट नहीं हुआ
ढहती हुई ईंटों और बहते हुए लावे के नीचे दबा—
मैं—
चाहता हूं चिल्लाना—
मैं हूं ! मैं हूं !! मैं हूं !!!

अपने से दूर

अपने से दूर इस रास्ते पर
यह कहां निकल आया हूं
कि वर्षों बाद
खम्भे पर लगे फटे पोस्टर पर
पढ़ता हूं अपनी मौत की खबर

स्मृतियों की जेबों में
एक भी सिक्का नहीं
कि इस शहर में
मरणोपरान्त जीवित रहने के लिए
खरीद सकूं कोई एक शक्ल !

हाथों में एक फटे हुए आसमान के
टुकड़े लिए हुए
सोचता हूं
कैसा है यह मौसम
जिसमें भाषा का तापमान
बर्फ हो चुकी मेरी चीख से ऊपर
जाता ही नहीं।
एक गलत शब्द-सा रद्द करूं अपने आपको !

या दोहराता जाऊं
खाई में लुढ़कते जा रहे पत्थर के समान
कि शायद उसके तल में
कोई अर्थ हो
या अंधेरा
या हो सकता है
खाई का कोई तल ही न हो।

वक्त के बीजगणित में
कैसे समीकरणों में टांक दिया गया हूं
कि मुझे जोड़ो या घटाओ
उत्तर हर बार शून्य हो आयेगा
इतिहास की थूक में
गौरैयाओं से नहाते हुए छोटे-छोटे सुख
नसों को
उत्तेजना की बीट से भर जाते हैं।

किसी भी मामूली सुविधा के

संदिग्ध प्रकाश में
अंतिम अश्लील इशारे तक
नंगी हो जाती है मेरी मजबूरी
रेस्तरां में कहकहों की झाग पर
तैरती है यह बात
कि एक जीवित समुद्र
नमक की डली बन कर रह गया है
समझौते की आखिरी मेज़ पर !

अनुभूति छंब के एक शरणार्थी की

डॉ० ओमप्रकाश गुप्ता

बारिश की पहली बूंद
बावा ने हथेली पर रखी
देखी परखी
बूंद वैसी ही,
लेकिन अपनी धरती पर
इनके झरने का संगीत
कुछ और था :
कुछ और थी बास
जो सोंधी माटी से उठा करती थी
होंठ
घंटियों की टनटनाहट
चूम चूम जाते थे :
धरती
अपनी धरती की बिछलाहट
बस देखते बनती थी,
'डबरों' में मेंढकों की
टरटराहट का शोर
कुछ और था।
लोग कहते हैं
अपना एक नया घर होगा :
बार-बार उजड़ने वाला घर
अब मेरा घर नहीं है
ओ साईं।
ये मेरे हाथ

ये पैर
सब उधारू लगते हैं
अनजाने में—
हलों के हत्थे
और वही पगडंडियां
खोजा करते हैं
या रब्ब।
हर बात और थी
हर अंदाज़ और था
अपनी धरती पर
बूंदों के झरने का
संगीत
और था…।

नन्हीं-सी लाल हथेली

कौन था
वह अजनबी कौन था ?
पौ फूटने से पहले
वह गली से गुजरा था
पेड़ों पर लटके सूखे पत्तों की तरह
नींद आंखों से झर गयी थी।
और सारी चांदनी
मासूम खुशबू से भर गयी थी।
मरुस्थली सन्नाटे में
फैल गयी थी—
देवदूतों के पंखों की सरसराहट
गेहूं की हरी बालियों के बीच
दूर के गांव की ओर चल दिए थे—

लोग;
और
चांदी के झरने में नहाने उतरी थी
परियों की रानी!

कुछ ही दिन पहले
उस वेतुके आदमी ने
वालू के घरौंदों को चूमा था
मैदान में बिखरे कंचों को
प्यार से दुलराया था;
गंवई चौपाल पर
वह खामोश बैठा रहा था
और शहरी चौराहे पर
वेइन्तिहा शोर के वावजूद
उसने अपनी बात कहने की कोशिश की थी।

शायद, वह लोक-कथा वाला राजा था
अपने काठ के घोड़े पर सवार
वह जंगल से शहर
या शहर से जंगल की ओर निकल गया था

घोड़ें के सुमों से उठी धूल
नीहारिका को घना कर गयी थी;
उनींदी आंखों में
उलझ कर रह गया था नीला अम्बर
और
मोरपंखी उड़नखटोले पर
दूर—
उड़ गया था
एक सुनहला सपना।
झरोखों में झांककर
वच्चों ने आंखें फेर ली थीं

और हैरानी से पूछा था—
भोर के सपने
क्या आजकल सच नहीं होते ?
रात की लोरी का सारा जादू
फूल की पत्ती-पत्ती पर क्यों निखर नहीं आता
कैसा इन्द्रजाल था,
विकट पहेली थी—
मेरी आंखों के सामने फैली हुई
एक नन्ही-सी लाल हथेली थी।
इस हथेली पर लिखे सवालों को
मैंने
कई बार पहचाना था
इसकी पवित्रता ने
पुतलियों में अजीब ठण्डक भर दी थी
किसी ने उसे समर्पित किए होंगे—
सारे संकल्प
हृदय का सारा प्यार
उसके नाम लिख दिया होगा।
मैंने उस हथेली पर
नयी डाक टिकटें रख दी थीं
बटोर नहीं पाया था
उसे चूमने का साहस।
लड़खड़ाते शब्दों की बैसाखियां
लगातार पुकारती रही थीं—
कौन था—
वह अजनबी कौन था।

फर्क

रमेश मेहता

अपने-अपने कारागार से
बाहर आ कर
इकट्ठे हो गए थे लोग
और अब
सभी
चंदन-वन को खोजते
पलाश की लाली में
भटक रहे थे।

अजब भूल-भुलैयां थी
हर पगडंडी
राजमार्ग पर खुलती थी
और नहीं था कोई भी
बंद गली का आखिरी मकान
अजीब बिडंबना थी

चंदन-वन तो एक बहाना था
वास्तव में
उन सबको खोजना
उस कलगीधर का ठिकाना था।
जो लकड़ी को चंदन बनाता था
एक रुपये में
दस लाख के सपने
दिखलाता था।

"चंदन-वन ढूंढो
यह राष्ट्रीय काम है"
प्रत्येक का हर एक के नाम
यही पैगाम था
और सब
एक टुकड़ा बांझ धरती नापते
सिर फुटव्वल का खेल
खेल रहे थे।

एक कच्ची पगडंडी
हैरान थी
राजमार्ग की गहमागहमी और
चकाचौंध से परेशान थी—
यह लोगों को प्रायः
क्या हो जाता है—
क्यों पलाश का रंग
उनकी आंखों पर इतना
छा जाता है कि
उन्हें
चंदन और लकड़ी में
फर्क दिखाई नहीं देता।

सुर्ख होने की इंतजारी में

वह गोपियों के प्यार का नहीं
घर वालों के दुलार और
मास्टर जी की मार का मारा था
इसलिए शहर भाग आया

शहर! उसके लिए एक सपना था
शहर! हर अजनबी सांस के लिए

बिल्कुल अपना था
शहर ! महज़ आकर्षण है—
खोने और पाने की सीमा के पार
एक टूटा दर्पण है।
अब
उसके हाथ
मुरली के छेद नहीं
तोंद सहलाते थे
पांव
अंधी गलियों में भटक-भटक जाते थे।
आवाज़ सिर्फ पैसे गिनती थी
और कान
इधर की सुनकर उधर को उड़ाते थे।
वह अंधा, गूंगा या बहरा नहीं था
बात सिर्फ इतनी है
कि अपने अधिकारों पर
कभी भी
उसका कोई पहरा नहीं था
वह अब बबूल-शहर की/कोई
बे-हया नंगी शाख बनता जा रहा था
या महज
भट्टी से बाहर छिटका एक कोयला था
जो सुर्ख होने की इंतज़ारी में
राख बनता जा रहा था।

गीत

निर्मल विनोद

चाँदनी में
नहायी हुई हर घड़ी
कल्पना में सही
पास लायी हमें,

ऊँघती वह सड़क थी
कि सोयी हुई
साधकर दम पड़ी
खेत की मेंड़ थी
पग जिधर भी गये
शहर में—गाँव में
खिलखिलाती हँसी
दी सुनायी हमें

था नहर का किनारा
कि पोखर जहाँ
झींगुरों के स्वरों में
बजा जलतरंग
मुग्ध होकर कभी
गुनगुनायीं अलस
तुम जहाँ भी
जगह, रास आयी हमें

अगरु का धूम था
या महक सन्दली

आरती का दिया था
कि बिन्दी कोई
जो कि हर रंग में
जो कि हर रूप में
तुम झुकाये नयन
दी दिखायी हमें

चाँदनी में
नहायी हुई हर घड़ी
कल्पना में सही
पास लायी हमें।

समय-शिला पर

नागफनी का जंगल मेरे अंतर में है
इधर न देखो
दृष्टि-बिम्ब यह तेरा—
बिंध-बिंध जाएगा

समय-शिला पर
लगी जहाँ है
इन हाथों की छाप
अक्सर वहीं
ठहरते पढ़ने
कुछ
नैसर्गिक पाप
उधर न बढ़ना
दंश विगत का—
देह सलोनी में

अनबुझ-सो
आग वही सुलगाएगा
दृष्टि-बिम्ब यह तेरा—
बिंध-बिंध जाएगा।
धड़कन
टूटी किसी सड़क की
पगडण्डी की धूल
बारहमासे मेंड़ों वाले
चुभते हैं
ज्यों शूल
अब मत मचलो
गजर रात का—
गहरी छान
कब्र में उतरा
सोया शहर जगाएगा,
दृष्टि-बिम्ब यह तेरा—
बिंध-बिंध जाएगा।
नागफनी का जंगल मेरे अंतर में है।

एक झोंका हवा के लिए

पृथ्वीनाथ मधुप

बर्फीले शिखरों की
ऊँचाइयों से आई
अनेक झरनों, झीलों जलाशयों के
कल-कल छल-छल
लघूर्मियों की निर्मलताओं में नहाई
बादाम-वौर—
केसर-कमल-किंजल्क-गन्धित
चिनार के हाथों संवरी
शंख-घंटा ध्वनियों
आयतों—ऋचाओं से पूत
प्राणद प्रात-वायु के लिए
पूरी खिड़की खोली
मैंने।
फैला पर्दा
समेट कर एक ओर दिया सरका
बैठा पाने को राहत
खिड़की के चौखट के इस ओर।
उस ओर
चौकोर टुकड़े पर
आकाश के—
अपने
कुंकुम के बदले
विषाक्त चिमनी—धूम्र-दैत्य द्वारा
पीन पर्त कालिख की

पुती पाई !!
कमरा
उमस से भर गया
(पहले से वहुत ही ज्यादा
तीव्र दुर्गन्ध से हुई मिचली
खुरखुरी आवाज़ें
कुंद दांतों वाली आरियों से लगीं चलने।
कट गया
टुकड़ों-टुकड़ों में
बिखर गया
मैं।
उबलते कोलतारी अंधकार के देश
धधक रहे
रेंग रहे
नस-नस में !!
अटक गई है सांस
छटपटाते हैं प्राण
टीसती है आत्मा :
एक झोंका हवा के लिए

एक ज्वलंत प्रश्न

अन्धकार
बल्ब के जलते ही
गली की खिड़की से
कूद कर
मर गया।
व्हॉइटवॉश
दीवारों का

हंसने लगा
दुग्धफेन-सी हंसी
सम्मोहित
आलोक मोहिनी से
शलभ
नाचने लगे
इर्द-गिर्द
पर,
शीघ्र ही बन गये ग्रास
आसपास रेंगती
छिपकलियों के ।
उधर गली से
प्रेत—
अन्धकार का
व्यंग्यवेष्टित मुस्कान में
बोला—
ओ प्रकाश ।
तुम्हारा
शलभों का आकर्षण सत्य है
या
सामीप्य छिपकलियों का

अल्बम के चार पृष्ठ

वितस्ता की सुबह

ज्योतीश्वर 'पथिक'

पर्वतों की ओट से
झांकते सूर्य की छवि
मचलती उर्मियां
रींगती नाव का गीत—
हे मेरे मन मीत
आए नहीं तुम
रात गई बीत
हो गई है भोर
चारों ओर
पक्षियों का शोर
बह रही—
मौन—
वितस्ता गंभीर;
जान सका कौन, मगर;
विरहिणी की पीर !

गुलमर्ग की दोपहर

महक रहे फूल
झूम रहे पेड़
खुली-खुली धूप
मस्त-मस्त रूप ।

जहां कभी गूंजी थी—
'जूनी' की आवाज़—
बार-बार
आजा मेरे
फूलों के बांके राजकुमार !
फ़िज़ाओं में खोए-खोए
आज भी वे गीत—
हे मेरे मन मीत…

झील डल की शाम

दूर तक फैली हुई—
झील……
थके हुए सूर्य की
धीमी-धीमी चाल
पर्वतों के पानी में
झुके-झुके भाल ।

लहरों से लहरें
हैं जूझती अनंत;
एक लम्बे सफर का—
थका हुआ अंत !
और
तुम………।
चारचिनारी पर
वादा करके नहीं आए
किरणों के साथ-साथ
डूब गए गीत
बागे-निशात के
फूलों जैसे मीत ।

हाउस-बोट की रात

पानी में तैरती है नाव
और
इसकी छत पर बैठा हुआ मैं
सोच रहा हूं—
(सिग्रेट के छल्लों के ताल पर)
कि तुम
एक स्वप्न तो नहीं
जिसकी टिमटिमाती छवि
सुबह के जन्म पर
दम तोड़ देती है !

नहीं-नहीं
फिर ख्याल आता है—
तुम मेरे पास बैठी हो,
पूरे चांद की तरह
तुम्हारा गोल-गोल चेहरा
मेरी आंखों में घूम जाता है
और मैं
तारों की बारात सरीखी
तैरती नौकाओं में खो जाता हूं
क्योंकि
आसमान का चांद
मुझे मद्धम और मरियल
महसूस होता है।

सिग्रेट का एक और कश
एक नया ख्वाब—
सुबह के तारे की
पहली किरण।
क्या नाम है तुम्हारा ?
जरा सुनूं तो।

बदलाव

पतझड़ के जलते हुए चिनार
बिखरते पत्ते
मदशीत हवाएं
लगते हैं लाचार
आज—
कैसी उदासी छाई है !
चारों ओर
उलझे हुए नारों का शोर
कुछ भी साफ सुनाई नहीं देता
कोई रास्ता दिखाई नहीं देता
सम्पूर्ण क्रांति के नेता
अब धुंधलाहट में आ गए हैं
और कुछ हारे जुआरी
अब झुंझलाहट में आ गए हैं
मेरे कमरे में लगे हुए
कैक्टस के कांटे
अब तीखे होने लगे हैं
रोशनी मरियल-सी लगने लगी है
जैसे कोई
अंधा युग आने वाला है।

नपुंसक इतिहास और मां

अग्निशेखर

पीली मखमली ध्वजा-सी लहराकर
या आवारा गुब्बारे-सी उड़ कर
या कुंवारी धूप-सी
बिछ कर आराम से
जो पाप तुम करती हो, निश्चिन्त मन—
भुगतना मुझे पड़ता है फल
मैं पाप करार दिया जाता हूं
...अस्वीकृत छटा पांडव
इसीलिए जनमते ही मुझे
दूध की मक्खी मान
सरिताओं में बहा दिया जाता है।

गैरों के खेमों में
लाचार मुझे
जूतों के खुर चबाने पड़ते हैं
और जब नफ़रत का बिच्छू
मस्तिष्क पर—
रेंगता हुआ
चढ़ जाता है :
मैं तुम्हें सुर्ख आंखों से घूरता हूं
कि तुम खड़ी होकर
मेरी आंखें ही फोड़ डालती हो
और अचम्भा यह
कि इतिहास तुम्हारे पास
पहुंचते-पहुंचते
हर बार
नपुंसक हो जाता है।

अंधे बहरे

खटिया पर बरसों से बीमार
लकवाग्रस्त बूढ़े-सी
मृत्यु
कब तक निहारती रहेगी
छत
खांस-खांस कर।
आज
सुअर की तरह
खा रहा गंदी नाली का कीचड़
पगला कर रौंद रहा मेंड़ें
जो
मेरे, उनके, आप सबके लिए
जुड़ने जाती हैं गुलमर्गों से
ज़िन्दगी को
कन्धे पर
तय करने के लिए फासले
बेमतलब
जरूरी है बेताल की तरह ढोते रहना,
जब तक न
दूर-दूर समुद्र में
हिचकोले खा रहे जहाज की तरह
वह डूब ही जाए—अन्ततः
तुम सिर पर उठा सकते हो आकाश भी
कोई फर्क नहीं पड़ता
क्योंकि—
किसी कारखाने के बाहर
आज आदमी आकर
ठीक उस कूड़े पर
खड़ा चिल्ला रहा है
जहां कल तक भौंकते थे कुत्ते।

वे—
जिनके भीतर नीयत में
गिद्धाड़े उड़ रहे हैं।
तुम्हें क्या बताएं—
वे अंधे ही नहीं,
बहरे भी हैं।

स्वावलम्बन

डा० आदर्श

हमारे पांव
ढूंढ लेंगे खुद अपना रास्ता
गलती तुम्हारी नहीं
हर पीढ़ी आने वाले को
अबोध अनजान समझती है
चाहती है—
बतलाना हर कदम का वज़न
जो ज़िन्दगी की राहों पर रखते हैं
नहीं समझते
उन रास्तों को जमीन अब बदल गई है
उस पर चलने के
हमारे अपने कुछ अंदाज़ होंगे
यह जरूरी नहीं कि हम भी
उन्हीं मोड़ों पर घूम जाये
जहां से उन्हें डर था
और वह बच कर निकल आये थे
मेरी अपनी राय में
जरूरत है उन्हीं मोड़ों पर ठहरने की
यह जानने की
आखिर वहां इतनी फिसलन क्यों है
या वहां से आगे का रास्ता बन्द क्यों है
या वहां पर कांटे बिछे हैं
तो यह किसकी बत्तमीजी है ?

माफ करना मेरे बुजुर्गवार
हम तुम्हारी तरह नहीं सोच सकते
केवल अपने लिए।
हमें नहीं चाहिए वह रहस्य
जो हमें इस चक्रव्यूह से बाहर कर देगा
अभी हमें हर योद्धा का हाल पूछना है
अव अभिमन्यु नादान नहीं है
उसे विषम परिस्थितियों से
बचना नहीं, जूझना है।

जवाबों की तलाश

शहर से किसी तरह पढ़ आने के बाद
भीखू चमार का बेटा सुन्दर
हर वक्त अपनी सोच से परेशान रहता है
उसे लगता है
कि या तो इस बीच गांव बदला है
या उसके देखने का तरीका।

उसे बार-बार लगता है
कि वह पिछले तीस बरसोंसे
कभी पूरी तरह नहाया नहीं है
कभी उसने मुँह धो लिया है
कभी हाथ, तो कभी पैर
पर उसके शरीर से छूटती बास
अपेक्षाकृत बढ़ती ही जा रही है।

जब भी एक नया अहसास उसे कचोटता है
तभी एक कच्चा कोयला

उसके झोंपड़पट्टे की कच्ची दीवार पर
सवालिया निशान खींचने के लिए
उसके हाथों में मचला है
और उसके घर गांव की सभी दीवारें
उससे जवाब तलब किया चाहती हैं।

यद्यपि उसे पता है
पर उसका बाप उसे बताने से डरता है
कि उसका उपजाऊ खेत
किसके इशारे पर कागज़ों ही कागज़ों में
उसकी सम्पत्ति न रहकर
दूसरों की मूंछों का ताव बन गया
कि कौन से हल की खूनी फाल
उसके खेत के धड़कते सीने में घुसकर
उसके नन्हें से अस्तित्व को लील गई।

पर एक दिन
उसे जाने क्या हुआ
अपना खेत देखते ही बैल सा बिदक उठा
'मैं जोतूंगा इसे यह मेरा खेत है
मैं मिट्टी सूंघ कर पहचानता हूं
मां ! मेरी मां !!
उसके फैलते-सिकुड़ते नथुने
व धौंकनी सी उतरती-चढ़ती छाती
जैसे उस माटी की सारी सोंधी गन्ध
अपने में भर लेना चाहती थी
और वह पगलाया सा
गीली मिट्टी में लोट लगा रहा था।

फौजदारी का आरोप
पुलिस जेल
सब का सब उसके लिए अतीत बन गया है
उसे पता है

उसका अकेला बाप—भीखू चमार
जूते गांठते-गांठते
हर टांके की गिनती के साथ
उसके छूट आने की
सम्भावित उम्मीद भी गांठता जाता होगा
किन्तु अपने
घर-गांव की दीवारों पर टंगे
सवालिया निशानों के लिए
जवाब उसे ले ही जाने होंगे
यह सोचते ही
उसकी आंखें
लावा उगलने लगती हैं
उसके हाथ अकड़ कर तन जाते हैं
और वह पूरी ताकत से
जेल के सींकचों को पकड़कर
झिझोड़ता चला जाता है।

एक अनाम यात्रा

अशोक जेरथ

जब हम कोई भी गीत गाते हैं,
ज़िन्दगी से थोड़ा सरक जाते हैं।
हवाएं अपने ही रूख में बहती रहती हैं।
यादें समय को छीनकर उभर आती हैं,
दरियाओं का पानी चलता रहता है नाकाम।
हर दिन के बाद उभर आती है थकी-सी इक शाम।
हर शाम दिन की बात दोहराती है।
हर सुबह शाम की उदासी भूल जाती है।
प्रकृति नीचे झुककर धरती को—
करती है प्रणाम।
अग्रसर होती हैं अनेक यात्राएं अनाम
गीत की स्वर-लहरियां—
हवा में तिरती रहती हैं।
सौरभ बिखेरते हैं केसर के कण।
विह्वल हो उठता है उन्हें पकड़ने को मन।
धीरे-धीरे जब स्वर—
टूटने लग जाते हैं,
हम अपने आगोश में वापस लौट आते हैं।

मेरा दर्द

मेरे साथ खेत चलते हैं
सीढ़ीदर सीढ़ी खेत
मेरे साथ चलने लगती है—

चीड़ों की हरियाली,
सांय सांय करते देवदार के वृक्षों की
चिंघाड़
फिर पक्षियों का चहचहाना
धीरे-धीरे बंद हो जाता है
ऊपर से सफेद पंखुड़ियां टपकने लगती हैं
सफेद बुरादा—
देवदार के शिखरों पर, चीड़ों के कंधों
पर
बैठ जाता है—ये क्रिसमिस ट्री बन जाते हैं
मार्ग पर चलने वाला हर आदमी बन
जाता है
सांताक्लाज
उभर आता है बर्फ का सन्नाटा
दब जाती है हर कोई
जीवंत आवाज़
बच्चों की आंखें
हर आने वाले सांताक्लाज के चेहरे को
टटोलती हैं
ठण्ड से सिकुड़े हाथ
शर्म की सिकुड़न के साथ
कड़कड़ाते हैं, आतुर हैं,
पर सांताक्लाज के थैले खाली हैं
बच्चे भूल जाते हैं
कि ये होटलों में न्यू ईयर्स ईव मनाने आए
मसनूई सांताक्लाज नहीं
जिनके थैले मिठाइयां से भरे होते हैं,
वे भूल जाते हैं कि
ये रूई लगे क्रिसमिस ट्री नहीं
जो आम और संगतरे के फल एक ही—
समय देते हैं।
वे हर बार तपड़े की झौंपड़ियों में

नये वर्ष की इन्तजार करते हैं
हर बार नए वर्ष की धूप के साथ
टप् टप् बर्फ पिघलकर
तपड़े की छतों को चीर कर
फर्श पर स्फटिक बनाती है
उन्मुन उन्मुन गाती है
आओ गले लग सो जाएं चैन से
ताकि दिन की धूप—
हमारे नंगेपन को न देख सकें
अभी हमने इन्हीं चिथड़ों से
अगले वर्ष, उससे अगले वर्ष और उससे
अगले वर्ष के आगमन का स्वागत करना है
इन्हीं चिथड़ों से बनाने हैं सांताक्लाज के
खाली थैले—
जिन्हें देखकर बच्चों के हाथ
आतुर हो जाते हैं।

हर बार जब बर्फ पड़ती है
मेरे साथ-साथ आहत चीड़ों का दर्द
देवदारों की चिंघाड़
ढुलमुल ढुलमुल सोढ़ीदार—
खेतों की हरियाली को ढांप देती हैं
मैं समझता हूं।
कि मेरा दर्द—अकेला नहीं।

फैलने की हद तक

उपेन्द्र रैणा

कमरे में लेटे
खिड़की से बाहर अपने हाथ इस तरह निकाल देता हूं
ताकि
धूप सेकने के बहाने
किसी का स्पर्श हो जाए—
किसी के मस्तिष्क का नहीं
क्योंकि
होना चाहता हूं मैं
विचारहीन
बहुत समय के बाद
जब मैं वापस लौटा
खिड़कियों के पर्दे बदल दिये गये थे,
रोशनदान पर लटकते
मकड़ियों के जाल को हटाया गया था,
मेरे कमरे की दीवारों पर लटकती
एब्सट्रैक्ट—तस्वीरों को
उलटाया गया था
आज मुझे ऐसा आभासित होता है
टांगें मेरी फैल रही हैं
और
इनकारती हैं वापस लौटने के लिए।
महसूसता हूं केवल
कमरे के ताक पर चढ़े मेरे पैर
अन्दर से हिल रहे हैं—

शायद इसी प्रतीक्षा में हैं,
कब दीवारें विस्तृत हो जाएंगी
क्योंकि फैलना अनिवार्य है
खिड़की से बाहर कोई स्पर्श कर देता है
उलट जाते हैं मेरे हाथ
टांगें और फैलने से इनकारती हैं
विस्तृत हो जाती हैं दीवारें
और
मैं अपने आपको ट्रैंकुलायजर से सुला देता हूं
फिर भी धूप सेकने के बहाने
लटक रहे हैं हाथ बाहर
एक और स्पर्श के लिए।

बन्द मुट्ठियों की तहरीर

मैं काजल की इमारत में बैठकर
ताश के पत्ते गिन रहा हूं—
लिख देता हूं हरेक पत्ते पर
आने वाला कल (अनिश्चित है)
समय को मुट्ठियों में बंद किए
सौंपता हूं घर औरों को
चढ़ा देता हूं रंग
कागज की दीवारों पर।
चलते कारवां से मिलना
छूना इन हाथों से आकाश को
चाहता हूं मैं भी।
परन्तु
कागज़ी इमारत में रहकर
एक पूरा जीवन जीना सीखने की
कोशिश में
रात भर जागना

दिन में फिर टूटना
शाम को जुड़ने के संघर्ष में
टांगें पसार के
करवटें बदलते रहना
अनिवार्य है—
तब
जब—मैं हूँ
हर क्षण के बाद

खुल जाते हैं
छोटे-छोटे हाथ बेतहाशा
आसमान की तरफ
हर पहली तारीख को
नियमानुसार मोल लिया जाता है मुझे।
बैठता हूं
क्षण
एक क्षण
क्षण भर के लिए
अपने बच्चों के साथ
बच्चों जैसी बातें करते हुए
आफिस फाइलों का सहारा लेकर
नन्हे-नन्हे हाथ—
तालियों की आवाज़
कोशिश करता हूं दबाने की
मेज़ पर पड़े पेपर वेट से
और
मैं लगातार गिनता जाता हूं
बिखरते ताश के पत्ते—
काश !
मैं स्वयं एक बिखराव न होता।

इस बार शायद

महाराज कृष्ण संतोषी

चलते-चलते
सहसा
पतझड़ के इस मौसम में
एक सूखा पत्ता
मेरी छाती पर आ गिरा
गत वर्ष की तरह
ज़ख्म की ताब न लाकर
मैं मर गया।
इस बार शायद
कोई बूंद अमृत ही न मिले
और यह मृत्यु अनंत हो।
इस बार शायद
कोई उस रास्ते से न आये
और मैं पड़ा रहूं तन्हा
या कोई आये भी अगर,
मेरी टूटती सांस पर
रखे पत्थर
थकी देह में घोंपे छुरा
और सूरज को मेरे खून से
लाल कर जाये
इस बार कुछ भी हो सकता है।
शायद शरद् का चांद
मेरी मौत का अगुआ हो,
अथवा ये टिमटिमाते तारे

हों संदेश वाहक,
हवाओं के हाथ में
हों नुकीले खंजर,
बारिशें तक जहरीली बरसें
ओ मेरी मृत्यु के गवाह पेड़
उनको चलते बताना
जो तेरी राह से गुज़रें—
ज़ख्म से मौत तक
एक और ज़िन्दगी है
बहुत जरूरी है जिसके लिए
एक अदद उम्मीद की

तलाश अभी जारी है

तलाश अभी जारी है
ज़िन्दगी की अंधेरी गुफा में।
पलंग के नीचे
छिपी किसी वस्तु-सा
शायद मुझे मिल जाए
अर्थ ज़िन्दगी का।
जहां सूरज
अपनी आभा का चूर्ण
बिखेर देता है
और निशा दर्पण की तरह
होती है साफ
ज़िन्दगी की उस अंधेरी गुफा में
तलाश अभी जारी है।
और मैं उस चीख से
बढ़ा हूं आगे

जहां तक मेरा पिता चिल्लाया था
फिर मर गया था
वह जगह बहुत हमवार थी
सिर्फ एक कुम्हलाया फूल
पड़ा था वहां
जिससे टकराकर गिर गया था
मेरा पिता और चिल्लाया था !
मैं उस कुम्हलाए फूल से
हुआ हूं पार
और बढ़ा हूं आगे
शायद मुझे मिल जाए
अर्थ ज़िन्दगी का
तलाश अभी जारी है।

लौट चलें जंगल की ओर

बलनील देवम्

इस नगर में रहने से अच्छा है
कि हम लौट चलें जंगल की ओर
और उतार दें सभी कपड़े
और भयमुक्त होकर
मारें किलकारियां।

यह सभ्यता बन गई है विषकन्या
और हम हो गए हैं उसके लिए उन्मादित
नतीजा साफ है
कि हम वक्त से पहले ही
खो देंगे अपनी उम्र
तब रोयेगा जंगल भी।

इस नगर में रहते हुए
मन हो गया है उचाट
और मेरे प्यारे सूर्य की रोशनी
लगती है कभी-कभी बीमार
चांद लगता है कोढ़ी
और कविता बन जाती है
शब्दों का पुलिन्दा।

पर उसका प्यार अभी भी है
फैला हुआ नीला आकाश
जिसमें उड़ान भरता मेरा जीवन

पर फिर भी मैं यही चाहता हूं
कि इस नगर में रहने से अच्छा है
कि हम लौट चलें जंगल की ओर
और उतार दें सभी कपड़े
और भयमुक्त होकर
मारें किलकारियां।

इस बार सर्दियों में

उन आसमान छूती चोटियों पर
जहां रूई के नाजुक और मखमली कणों-सी बर्फ
गिर रही है
आओ चलें—और बनाएं
बर्फ का घरौंदा।
तुम देखना—
हमारे पवित्र प्यार की गर्मी से
वह नन्हा-सा घरौंदा
पिघल कर बिखरेगा नहीं;
वह सूरज की तरह शाश्वत होगा
और खिल आएंगे वहां सफेद फूल
जो दहकते रहेंगे
सुर्ख अंगारों की तरह
बहुत मासूम होंगे वे क्षण—
कृष्ण की बांसुरी धुन पर
ठगी-ठगी मुग्ध राधिका की तरह।
और हम हंसते हुए धड़कते रहेंगे
एक-दूसरे के भीतर।
इस बार सर्दियों में
हमारे जिस्मों ने छुआ है एक-दूसरे को

और हमारे जिस्मों के भीतर बहती
रक्त की गर्म नदी
उछल कर बही है आकाश की ओर !
ब्रह्माण्ड के सुखों को भुलाया है हमने
इस बार सर्दियों में।
ओ मेरी प्रिये !
आओ चलें—और बनाएं
बर्फ का घरौंदा
उन आसमान छूती चोटियों पर
जहां रूई के नाजुक और मखमली कणों-सी बर्फ
गिर रही है।

खोखले एहसास के कंधों पर टिकी शाम

अशोक कुमार

हर ढलती शाम को
क्षितिज पर फैले
सिंदूरी अंगों के सामने खड़ा
मैं
सन्नाटे के बोझ से
बहुत झुक जाता हूं।
झुककर अपने को बचाने की कोशिश
एक मजबूरी है
क्योंकि मशीनी पुर्जे की भांति
घिसघिस कर बेकार हुआ
मैं
सन्नाटे और शोर किसी भी अवस्था में
फिट नहीं हो पाता।
विषमताएं काले साये बनकर
बढ़ती हुई, और बढ़ती हुई
मुझे दबोच डालती हैं
जिजीविषा का आग्रह
मासूम, मौन कब्रों पर
फूल खिला देता है।
आगे बढ़कर
ढलती शाम का आंचल
गले लगा लेता हूं
मगर पौ फटने की
एक अंतहीन प्रतीक्षा

दीमक बनकर
मुझे और खोखला बनाने लगती है
मुर्दा एहसास के कंधों पर टिकी शाम
दूर
दूर
दूर होती जाती है

कान में फूंके हुए मन्त्र

जन्मते समय मां ने
कान में कुछ कहा था
याद नहीं
थोड़ी ही देर पहले कोई बुदबुदाया था—
देखो, खेत खलिहान जाग गए
मंजरियों से लदे आम ने ज़मीन छू ली
अभी कोई कोयल कूकेगी
अनावश्यक हो जाएंगे लैम्पपोस्ट;
सामने उपत्यकाओं पे सूरज उगने पर
आकाश हरा होगा;
खेतों के पार नगर में मशीनें गूंजने पर
फसलों, फूलों को एक नया अनुभव होगा।
बिलकुल नया।
किन्तु, वह सूरज अंकुरित न हुआ
जिससे आकाश को हरा होना था
नींद में था
स्वयं किसान और मज़दूर
रौंदी हुई सड़कों पे चलने वालों के
अर्थहीन रागों की ध्वनि से
स्पष्ट था
कि यह मंत्र भी मेरे लिए
न रर्थक और निरुद्देश्य थे।

तथाकथित ईश्वर

क्षमा कौल

ईश्वर, मेरे तथाकथित ईश्वर !
जानती हूं,
तुम आजकल,
कितने कवियों का विषय बने हो;
कितनी गालियां, बदनामियां—
तुम्हारे सिर हैं।
कितनी क्रान्तियां वे लाने—
तुम्हारे विरोध में,
फटने को हैं।
और
मैं तुम्हारी एकमात्र प्रेमिका,
आखिर तुम्हें,
कितने अपवादों से बचा सकती हूं।
एक दीर्घकालीन,
संजोयी आस्था,
सुनकर कि तुम्हें कल,
अज्ञात स्थान पर ले जाकर,
खूब पिलाया पीटा और लूटा गया
अब टूट गई।
फिर भी कितने ही आवरणों से
उसे अनसुना-सा करने का प्रयत्न—
किया था।
पर कल,
जब तुमसे भेंट के लिए

मंदिर पहुंची; और देखा
तुम किसी रमणी के—
अलकांतों में उलझे थे।
पहले क्षण मेरा दम-सा निकल गया
और पैरों तले की मिट्टी खिसक गई
दूसरे क्षण अनायास ही मेरे मुख से निकला
कितने लम्पट हो तुम ईश्वर!

नये सूर्यपुत्र की प्रतीक्षा

सुशान्त चौधरी

आखिर कब तक
मूंद कर अपनी आंखें
साहस-उत्साह
उत्सुकता छोड़ कर
आस-पास फैले
सभी रास्तों से
निज को काट कर
अपने भीतर
मात्र एक ज्योति पुन्ज की
आस लिए
बैठा रहूं यों ही।
ज्योति पुन्ज वह—
जो मुझे ललचाता है
जब-जब उसने
मेरे अन्धे मन को
दृष्टि दी
मैं मचल-मचल उठा
उसे अपने भीतर
भर लेने को
पर हमेशा
मेरी कामनाओं की बांहें
उसे नहीं समेट पातीं
उसे अपने भीतर
नहीं लपेट पातीं

मेरे साधना पथ पर
अवतरित हो कर
क्या कोई सूर्यपुत्र
उसे कभी लायेगा मेरे समक्ष
लगता है
शायद मुझे
रास्ते के बीच इसी तरह बैठे रहना है।

मृत्यु,
एक संज्ञाहीन स्थिति
जीवन,
आलोक की तृष्णा
क्या कभी कर पायेगा कोई
इन दोनों को समन्वित
समरस समानाकार
क्या सजा पाऊंगा मैं
कभी अपने आज को
इस नये बोध से
लगता है
मेरी इस यातना की अवधि
अंधेरे की तरह शाश्वत है,
चिरन्तन है—

लगता है
नये सूर्यपुत्र के जन्म में
अभी बहुत विलम्ब है
अच्छा है
बैठे रहने को नियति समझकर
सूर्य पुत्र की प्रतीक्षा में
बैठा रहूं
इसी तरह बैठा रहूं।

सांझे मंच पर

—सुतीक्ष्ण कुमार 'आनन्दम'

(एक भव्य प्रासाद। सामने वाली दीवार पर क्लॉक लटक रहा है जिसके नीचे पुस्तकों की एक अथवा दो अलमारियां या रैक सटा रखा है। एक ओर समाचार-पत्र-पठन स्टैंड है जिसके ऊपर पड़ा समाचार-पत्र एक ओर लटका हुआ दिखाई दे रहा है। आवश्यकतानुसार कुछ मेज़ तथा कुर्सियां करीने से लगाई गई हैं। दाएं-बाएं प्रवेश द्वार हैं। बाएं प्रवेश द्वार के साथ ही खड़ा हो सकने में असमर्थ तीन टांग का स्टूल रखा है।
पर्दा उठता है। अंधकारमय मंच दिखाई देता है—इसके साथ ही निराशा का प्रतीक संगीत उभरने लगता है जिसके साथ ही साथ धीमा-धीमा प्रकाश फैलना आरम्भ होता है। पृष्ठभूमि में एक वृद्ध पुरुष का टीस भरा स्वर गूंजने लगता है।)

वृद्ध पुरुष : हजारों वर्ष बीत चुके। हां, आज से हज़ारों वर्ष पूर्व मैंने इस क्लब का संयोजन किया था। मेरा सपना रहा···यह क्लब···क्लब न होकर···एक आदर्श परिवार बने। इसके सदस्य···एक परिवार के सदस्य कहलायें। किन्तु···किन्तु इन हजारों वर्षों में···कभी मेरा यह सपना साकार हो पाया ? मुझे स्मरण नहीं है···याद नहीं है।···देने को इस क्लब को मैंने क्या नहीं दिया ? हां···क्या नहीं दिया ? व्यक्ति दिये···धर्म दिया···ज्ञान दिया···अर्थ-दान दिया···व्यवस्था-सम्पन्नता दी। मैंने इसे सर्वस्व दिया। जो शेष रहा वह भी इसे देने का निरन्तर यत्न किया मैंने। हां—

मैंने वह भी इसे दे दिया।···परन्तु···परन्तु इतना सब होते हुए··· इतना सब प्राप्त करके भी···यह विचित्र-सा जीवन जी रहा है। क्या यही मेरा सपना था? क्या यही था? यही था क्या मेरा सपना? मे···रा···सप···ना?

(समस्त मंच पर पूर्ण प्रकाश फैल जाता है। झकझोरती संगीत ध्वनि गूंजती है जो कुछ क्षण पश्चात सन्नाटे की ओर अग्रसर हो जाती है। कुछ क्षणों बाद मौन को भंग करती एक आवाज़)

पहला सदस्य : **(प्रवेश करके चारों ओर देखते हुए)** अभी यहां कोई नहीं आया? कोई भी नहीं? **(कलाई घड़ी पर समय देखता है)** ओह अभी पांच मिनट शेष हैं! **(मेज़ों की ओर देखता हुआ)** कैरम बोर्ड? चैस? ओऽऽ प्लेइंग कार्डस? लूडो?···गुड! लूडो! मैं लूडो का खिलाड़ी हूं। **(चलकर लूडो की मेज सम्भालता है)** कोई-न-कोई साथी अवश्य आ रहा होगा जो मेरे साथ खेलेगा। **(तनिक सोचता है फिर बेरा को पुकारता है)** खान?···खान?···अबे खान?

खान : **(दूसरे कमरे से आता है)** हाजिर हुआ शाब! **(समीप आकर)** क्या हुक्म है शाब?

पहला : एक काफी लाओ! एस्प्रेसो!

खान : अभी लाता शाब! **(प्रस्थान)**

(पहला लूडो को देखता और टटोलता रहता है—मुस्काता है)

खान : **(काफी लेकर प्रवेश)** लीजिए शाब! **(मेज पर रखकर)** और कुछ लाऊं शाब?

पहला : नहीं, और कुछ नहीं चाहिए!

खान : सलाम शाब···**(कहता कहता रुक जाता है, मुस्कराता है, और प्रस्थान करता है)**

(पहला काफी के घूंट भरने लगता है)

दूसरा सदस्य : **(सीटी बजाते और कमीज का कालर ठीक करते हुए प्रवेश)** ठीक! ठीक है!

पहला : **(सहसा)** क्या ठीक है?

दूसरा : ऐं?···कुछ नहीं!···सब ठीक है! **(होठों पर अंगुली नचाता हुआ एक मेज की ओर देखता है)** अं···ऽऽ···ऽऽ···वह रहा ताश! **(जाकर बैठता है। जम्हाई लेता है। ताश फेंटता हुआ पहले सदस्य से)** आओ भाई कार्डज़ खेलें!

पहला : खेद है···मुझे कार्डज़ खेलना नहीं आता।

दूसरा : ओऽऽ !

पहला : तुम्हीं आ जाओ। लूडो खेलेंगे !

दूसरा : सो सारी ! मैं आपका यह खेल नहीं जानता। (**स्वगत**) खैर, जब तक···(**खान को पुकारता है**) खान भाई !···अरे ओ खान भाई !

खान : (**दूसरे कमरे से आता हुआ**) हाजिर हुआ शाब ! (**समीप आकर**) क्या हुकम है शाब ?

दूसरा : एक चाय लाओ !

खान : अभी लाता शाब ! (**प्रस्थान**)

(दूसरा सीटी बजाता हुआ ताश फैंटता है)

खान : (**चाए लेकर प्रवेश**) लीजिए शाब ! (**मेज पर रखकर**) और कुछ लाऊं शाब ?

दूसरा : (**हल्की डांट**) तुम्हें मालूम नहीं खान कि पहले ही आदेश के साथ सब कुछ पूछ लिया या बता दिया जाता है। अब जब तक तुम खाने के लिए कुछ लाओगे तब तक चाए ठंडी होकर शरबत बन जाएगी !

खान : (**सिर खुजाता हुआ**) गलती खा गया शाब !

दूसरा : ठीक है, ठीक है। आगे याद रखना।

खान : ठीक है शाब !

दूसरा : जाओ अपना काम करो !

(खान का प्रस्थान)

दूसरा : (**चाय पीता हुआ स्वगत**) कितनी ताज़गी प्रदान करती है यह चाए ? मज़ा आ रहा है।

पहला : (**स्वगत**) खैर, कोई न कोई तो आएगा जो मेरे साथ खेलेगा।

दूसरा : (**स्वगत**) कितना ही अच्छा हो यदि मजेदार चाए की तरह मेरे साथ खेलने के लिए कोई मनोरंजक पार्टनर आ जाए।

(पहला और दूसरा सदस्य काफी तथा चाए के घूंट भर रहे हैं)।

तीसरा सदस्य : (**सिर खुजाते हुए तथा भुनभुनाते हुए प्रवेश**) वन, टू···! फस्ट सैकण्ड···! हुंऽऽ ! ओनली टू एण्ड आई थ्री अर्थात थरड।

पहला : यह कौन सा हिसाब लगाया जा रहा है ?

तीसरा : यों ही देख रहा हूं कि दो टेबल लग गए हैं और मैं तीसरा हूं।

दूसरा : ठीक ही दीख रहा है।

तीसरा : ओ के ! ओऽ के ! (**भुनभुनाता हुआ सब मेज़ों को देखता है**)

कैरम बोर्ड···चैस···कार्ड्ज़···आयेंऽऽ···वंडरफुल।

पहला : (तीसरे से) आओ लूडो खेलें ! **(हाथ में उठा कर लूडो दिखाता है)** बहुत ही रोचक खेल है। चले आओ !

तीसरा : **(गर्दन झटक कर)** यह बच्चों का खेल है।

दूसरा : **(ताश फेंटता हुआ)** तो आओ ताश खेलेंगे !

तीसरा : **(नाक चढ़ाकर हाथ से अभिनय करता हुआ)** ओ' नो ! यह खेल महिलाओं के लिए···तुम्हीं आ जाओ, चैस खेलेंगे। यस···कम आन !

पहला : चैस बूढ़ों का खेल है।

दूसरा : लाचारों की पसन्द है।

तीसरा : खैर तुम्हारी इच्छा ! वैसे तो इसे शाही खेल कहा जाता है और अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में खेला जाता है। **(तनिक सीटी के बाद खान को पुकारता है)** ओ खान···?···ओ खान ?···कहां गुम हो गए हो तुम ?

खान : **(प्रवेश)** हाजिर हूं शाब !

तीसरा : कहां गुम हो गए थे ?

खान : अन्दर था शाब ! बड़ा शाब के करीब था शाब।

तीसरा : एक छोटा लाओ !

खान : कौन-सा लाऊं शाब ?

तीसरा : स्काच !

खान : साथ में क्या लाऊं शाब ?

तीसरा : **(खीज कर)** अब लाओगे भी···या यों ही पूछे जाओगे ?

खान : ठीक है शाब ? **(स्वगत सिर खुजाते हुए)** बाद में पूछा क्या लाऊं शाब ? और पहले पूछा क्या लाऊं शाब ?—दोनों पलड़ा बराबर बैठता है। अब बीच में पूछेगा ! हां बीच में !

तीसरा : **(डांट)** अभी तक यहीं खड़ा है कम्बख्त ?

खान : अभी जाता शाब ! अभी जाता ! **(जाते हुए फिर लौटता है।)** क्या बोला था शाब ? क्या लाऊं ?

तीसरा : **(चीखकर)** सुना नहीं था ? एक छोटा—स्काच !

खान : भूल गया था शाब ! अभी लाता ! **(प्रस्थान)**

तीसरा : **(बड़बड़ा कर)** कैसे-कैसे बेरों से पाला पड़ता है ? **(अभिनय सहित सीट पर कोई धुन छेड़ता है)**

खान : **(प्रवेश)** लीजिए शाब ! **(मेज़ पर छोटा रखने के बाद पहले दूसरे सदस्यों की मेज़ों पर से खाली प्याले उठाता है। प्रस्थान)**

तीसरा : (एक घूंट भरता है। जाम हवा में लहराता है) फार दि सेक आफ ओनली परसनल हेल्थ एण्ड चिअरफुलनेस ! (जाम को चूमकर फिर एक घूंट भरता है)

चौथा सदस्य : (पाइप पीते हुए प्रवेश करता है। कुछ पल के लिए समाचार-पत्र पठन स्टैंड के सहारे खड़ा होकर एक दो कश खींचता और चारों ओर का वातावरण चुपचाप देखता है। फिर स्वगत) आई वांट माई लवली कैरम बोर्ड ! (देखते ही उस ओर अंगुली उठाता है) ओ' टेबल नम्बर सात ! गुड लक ! सेवन इज़ नाट एन इवन नम्बर···बट एन ऑड नम्बर ! (कश खींचने के बाद टेबल की ओर जाता हुआ) रिअली वेरी गुड ! (दीर्घ श्वास के साथ बैठता हुआ पहले से) आओ खेलें !

(पहला मौन हो उसे देखता और नज़र हटा लेता है)

चौथा : (दूसरे से) तुम्हीं आओ ! कैरम हो जाए !

दूसरा : सारी !···यहां आओ ताश खेलेंगे !

चौथा : सो सारी ! (तीसरे से) तुम तो आओगे मेरे साथ ?

तीसरा : किसलिए ?

चौथा : वी' शैल एन्जॉए कैरम बोर्ड !

तीसरा : आई डोंट नो दिस गेम ! आओ चैस खेलेंगे !

चौथा : (स्वगत) इडिअट ! बोलता अंग्रेजी है और कैरम बोर्ड जैसी सिम्पल गेम नहीं जानता। (प्रकट) सो सारी···सेम इज विद मी !

तीसरा : (स्वगत) साला कहीं का। चैस जैसी वैस्टरन गेम जानता नहीं और बकता वैस्टरन लैंग्वेज अर्थात अंग्रेज़ी है (चौथे की नकल) सेम इज़ विद मी !···हुं !

(कुछ क्षण मौन रहता है। सभी जैसे कुछ सोच रहे हैं। तत्पश्चात एक-दूसरे की देखा-देखी अकेले-अकेले खेलना आरम्भ करते हैं। यथा—आप ही गुरु और आप ही चेला। कोई ताश फेंटकर पत्ते बांट रहा है, कोई कैरम के गोट स्ट्राइक कर रहा है, कोई चैस के घोड़े और प्यादे दौड़ा रहा है इत्यादी। इसी बीच एक धोती चश्मा पहने व्यक्ति दार्शनिक मुद्रा में प्रवेश करता है, और समाचार पत्र को उलट-पलट करने के बाद उसे पढ़ने लगता है।)

पहला : (नवागंतुक को देखकर व्यंग्यात्मक स्वर में) आ गया फिलासफर !

तीसरा : (हल्के नशे में) हूं·· ऽऽ ! मीनिया केस !

चौथा : (संवेदनशील) त···त···त (व्यंग्य से) तरस के योग्य है बेचारा।

मेरे पास आता कैरम का मजा ही ले पाता।

दूसरा : तुम्हारे पास क्यों आता? भला मेरे साथ न खेलता?

पहला : तुम दोनों मूर्ख हो। उसे यदि खेलना ही होगा तो मेरे साथ लूडो का मज़ा न लेगा?

दूसरा : सो तो ठीक है किन्तु तुमने हमें मूर्ख क्यों कहा?

चौथा : इट मीन्ज़···तुमने हमें गाली दी है।

पहला : ठीक ही तो कहा है। तुम दोनों मूर्ख हो।

दूसरा/चौथा : **(एक साथ)** शट-अप!

पहला : यू शट-अप!

चौथा : यू नानसेंस!

दूसरा : ईडिअट!

पहला : ज्यादा न बको। यह क्लब है···यारों की गली नहीं।

चौथा : यह क्लब हमारा भी है।

दूसरा : तुम्हारे बाप का है क्या?

पहला : बाप का नाम लेता है साले?

दूसरा : साला कहता है साले? उल्लू का पट्ठा। **(ये गालियां उग्र-लड़ाई का रूप धारण कर लेती हैं। सीने तानते और बाज़ू कसते हुए···)**

पहला : गाली मत बको।

दूसरा : किसने गाली दी?

चौथा : **(हंसते हुए)** इसके बाप ने।

पहला : मैं तुम्हारे दांत तोड़ दूंगा।

दूसरा : मैं तुम्हारी हड्डी पसली एक कर दूंगा।

पहला : तुम्हारे होश ठिकाने लग जाएंगे।

चौथा : उल्लू का पट्ठा।

दूसरा : हरामज़ादा।

पहला : आंखें दिखाता है? नोच डालूंगा।

चौथा : अबे चू···प···कर···र!

पत्र-पाठक : **(चश्मा ठीक करता हुआ आगे आता है। तनिक गम्भीर)** यह क्या हो रहा है? **(लड़ाई का वातावरण तनिक शांत होता है)**

पहला : यह दोनों मुझे गालियां दे रहे हैं।

दूसरा : पहले तुमने गाली दी थी।

चौथा : हां, हां! पहले इसी ने गाली दी थी।

पहला : मैं सच कह रहा हूं···मैंने कोई गाली नहीं दी।

दूसरा : हां! इसने हमें मूर्ख कहा था।

पहला : किसी को मूर्ख कहना तो साधारण सा रिवाज़ है। मैनर है। आजकल···अंग्रेज़ी शराब की तरह।

दूसरा : तुम्हारे रिवाज़ और मैनर की ऐसी तैसी।

पहला : (**पत्र पाठक की बांह झिंझोड़ता हुआ**) देखो देखो···अब फिर गर्मी खाने लगा है।

चौथा : अरे बिगाड़ ले हमारा क्या बिगाड़ेगा तू ? दो के सामने तुझ अकेले की कौन सुनेगा ?

दूसरा : अबे चुप क्यों हो गया। अब बोलता क्यों नहीं ?

चौथा : अब क्या बोलेगा साला !

खान : (**ऊंचे स्वर में**) शुनो !···शुनो भाई शुनो !
(**सभी खान की ओर देखने लगते हैं**) शुनो आप बड़े शाब से मुलाकात करेंगे। याद रहे !···शुबह।

पहला, दूसरा, चौथा : (**एक साथ**) क्यों ऽ भला ऽऽ···?

खान : कल सुबह आपके इस फशाद का जवाब तलब होगा।

चौथा : (**स्तब्ध**) जवाब तलब ?

दूसरा : (**विस्मित**) कौन करेगा ?

खान : कल शुबह गाली कमीशन में इनक्वायरी होगा। (**झुक कर**) गुस्ताखी माफ ! (**प्रस्थान**)

पहला : तो बात यहां तक पहुंच गई ?

पत्र पाठक : (**व्यंग्य से**) बड़े-बड़े कमीशन देखे···बड़े बड़े कमीशन सुने और बड़े-बड़े कमीशनों के बारे में पढ़ा।···किन्तु गाली कमीशन भी कोई होता है—यह आज ही सुना। कल कोई छींक मारेगा तो सम्भव है—छींक कमीशन भी सुनाई दे जाए। (**सभी हंसते हैं**) हंसो मत। (**गम्भीर**) भाई, अपनी-अपनी मेज देखो।

(सभी अपने अपने स्थान पर बैठ जाते हैं। लड़ाई के बाद की मुद्रा में। मौन। कुछ देर बाद एक दीन-सा फटेहाल व्यक्ति, जिसकी अवस्था सर्वाधिक है, बीड़ी पीता, चुटकियां बजाता हुआ प्रवेश करता है और सीधा बाएं द्वार के साथ पड़े उपेक्षित स्टूल के साथ सट कर भूमि पर बैठ जाता है। स्टूल की धूल झाड़ कर व्यंग्यात्मक हंसी हंसता हुआ लम्बे-लम्बे कश खींचता है।)

पगला : ···ही ही ही···! ही ही ही ही—(**कुछ देर के बाद खड़ा होकर**

अंगड़ाई लेता है। कुछ क्षण पत्र-पाठक को बड़े ध्यानपूर्वक देखता है। फिर उसके पास जाकर खड़ा हो जाता है और एक विश्लेषक की भान्ति सर से पांव तक उसे देखता हुआ दूसरी बीड़ी सुलगाता है)

पत्र पाठक : तुम मुझे नाप तोल कर क्या देखे जा रहे हो ?
(पागल पूर्ववत उसे देख रहा है)

पत्र पाठक : सुना नहीं ?···यह मेरी ओर क्या देख रहे हो ?

पगला : (हंसता है) ही ही ही···कुछ नहीं ! ही ही ही···कुछ भी तो नहीं !

पत्र पाठक : तो जाओ अपना काम करो। (नकल) ही ही ही।

पगला : (दाएं हाथ से उसी की ओर संकेत करके) ही ही ही···

पत्र पाठक : जाते हो कि नहीं ?

पगला : आपसे एक बात पूछूं ?

पत्र पाठक : जल्दी पूछो 'ही ही महाशय'।

पगला : यह क्या पढ़ते हैं आप ?

पत्र पाठक : समाचार-पत्र है यह।

पगला : आप इसमें क्या पाते हैं कि रोज आकर इसी में खोए रहते हैं ?

पत्र पाठक : (गर्व से) इसमें संसार की बड़ी-बड़ी घटनाओं और बड़े-बड़े लोगों के बारे में लिखा रहता है। साधारण लोगों के जीवन की झलक मिलती है। और···

पगला : (विस्मित) साधारण लोगों के जीवन की झलक भी ?

पत्र पाठक : हां तो !

पगला : (प्रफुल्लित हंसी के साथ) तब तो इसमें मेरे बारे में भी लिखा होगा ?
(पत्र पाठक अवाक-सा देखता रह जाता है)

पगला : ही ही ही···अवश्य लिखा होगा। ही ही ही···क्या लिखा है ?

पत्र पाठक : (कटाक्ष) जाओ जाओ बीड़ी फूंको ! (नकल करता है) जरूर लिखा होगा ! ही ही ही···

पगला : (करुण) क्या मैं साधारण लोगों में से नहीं हूं ?

पत्र पाठक : नहीं।

पगला : (रुआंसा) नहीं···?

पत्र पाठक : अब जा भी···और बीड़ी फूंक।···सुना नहीं ?

पगला : (कथित पर स्वगत मनन) जा अब···और बीड़ी फूंक···सुना नहीं ? (पाठक से) बीड़ी के लिए पैसे दे सकते हैं आप ?

पत्र पाठक : (चिल्लाकर) तुम जाओगे कि नहीं ? (बड़बड़ाता है) न जाने इन लोगों को क्लब की मेम्बरशिप कैसे मिल जाती है ?

पगला : (**नम्र तथा मित्र भाव से**) नाराज़ क्यों होते हैं आप ? जाता हूं, चला जाता हूं। वैसे मैं इस क्लब का सबसे पुराना सदस्य हूं। इसके निर्माता का बेटा हूं। ही ही ही··· (**हंसता हुआ अपने स्थान पर आ जाता है**) तुम ठीक कहते हो। मैं साधारण लोगों में से भी नहीं हूं। मैं तो पागल हूं, पगला ! समाचार पत्र में मेरे बारे में क्यों छपेगा भला ? मैं कोई वह तो हूं नहीं, जो कुछ तुम हो ! ठीक कहा न मैंने ? (**हंसता हुए बीड़ी सुलगाता है और स्टूल को सीधा खड़ा करके उस पर बैठने की असफल चेष्टाएं करता है। फिर खीझकर निराश एवं उचाट-सा भूमि पर बैठ जाता है—पूर्ववत। शेष सभी पात्र अकेले-अकेले खेलने में मस्त हैं। अथवा कुछ बैठे-बैठे हरकतों में हैं। कुछ पलों के बाद हाथ में दो-तीन पुस्तकें लिए किताबी का प्रवेश ! लम्बे बाल ! सीधा पुस्तकों की अलमारी के पास आ जाता है। चारों ओर देखता है और फिर अलमारी खोल कर किताबें टटोलने लगता है। एक पुस्तक निकालता है—देखता है—रखता है और इसी प्रकार···**)

किताबी : (**पुस्तकों के नाम देखता हुआ**) गोल गप्पिया प्यार !···इमलिया खुमार !···नींबुई प्रेमी !···लाचाऽऽर हसीना !···खांसी खुश्क ! तैरती लाशें !···मुंह बोलते कंकाल !···रेडिएटिंग इश्क ! वाह ! वाह ! इस उपन्यास की बात ही क्या है? खूब बिक्री हुई है इसकी ! रेडिएटिंग इश्क ! रेडिएटिंग इश्क तो बाज़ार में मिलता ही नहीं ! अब तो सुना है कि इस उपन्यास के नकली संस्करण भी प्रकाशित हो रहे हैं। (**चमकर**) किस अंधे को मालूम था कि रेडिएटिंग इश्क इस अलमारी में से मिल सकेगा ?

पगला : (**किताबी के निकट आकर**) भाई, तुम क्या कह रहे हो ? क्या देख रहे हो ?

किताबी : (**वही उपन्यास गर्व से दिखाता हुआ**) उपन्यास ! यह देखो ! यह बहुत ही अच्छा उपन्यास है।

पगला : यह ?

किताबी : हां, यही ! रेडिएटिंग इश्क ! नाम भी क्या जोरदार है ! (**आह भरकर**)तुम्हारी कसम, गर्मी आ गई पढ़ कर !

पगला : उपन्यास पढ़कर तुम्हें क्या मिलता है जो नाम से इतनी गर्मी आ गई ?

किताबी : अरे, यह मत पूछो ! रातों की नींद हराम; दिन का चैन फरार। रात को सूरज और दिन को चांद दिखाई देता है। सुनहरे रंगीन सपनों में वर्ष बीत जाता है। मैं एक बाढ़ में बह जाता हूं।

पगला : तो फिर इन्हें न पढ़ा करो। साहिल से बेसुध नौकाएं डूब जाया करती हैं।

किताबी : तो क्या हुआ ? यह भी तो एक निचला किनारा कहलाती है।

पगला : यह तो तुम्हारी समझ की बात है। तुम पागल तो नहीं कहलाते। मुझे दुनिया पगला कहती है। ही ही ही···क्योंकि मैं ऐसी ही बातें करता हूं।

किताबी : डूबने में ही तो सुख है। खो जाने में ही मुक्ति है।···और फिर··· इन उपन्यासों द्वारा मैं समाज का सजीव चित्र भी तो देखता हूं।··· कई पात्र सामने आ जाते हैं।

पगला : (**आश्वस्त**) अच्छा···?

किताबी : मैं झूठ बोल रहा हूं क्या ?

पगला : नहीं ! यह बात नहीं !

किताबी : तो फिर ?

पगला : (**तनिक मौन के बाद**) एक बात पूछूं ?

किताबी : पूछो !

पगला : मैं भी समाज का एक पात्र हूं न ?

किताबी : हो तो !

पगला : इन उपन्यासों में मेरे विषय में क्या पढ़ा है तुमने ?

किताबी : तुम्हारे विषय में ?

पगला : हां, मेरे विषय में !

किताबी : (**उपेक्षित दृष्टि डालता हुआ**) अबे जा, मुंह छिपा के बैठ ! मुझे पढ़ने दे।

(पगला अचम्भे से देखता है)

किताबी : (**हाथ दिखाता हुआ**) अबे जाता है या दूं एक झापड़ ?

पगला : (**हंसी**) ही ही ही···मैंने तो यूं ही पूछ लिया भाई ! नाराज क्यों होते हो ? तुम पढ़ो···खूब पढ़ो ! रेडिएटिंग इश्क··· ! (**अपने स्थान की ओर जाता हुआ**) ही ही ही···रेडिएटिंग इश्क ! (**अपने स्थान पर खड़ा होकर चारों ओर देखता हुआ**) ही ही ही··· रेडिएटिंग इश्क···ही ही ही !

(एक झुनक के साथ संगीत उभरता है और धीरे-धीरे शान्त होकर मौन हो जाता है। कुछ ही समय पश्चात सभी

सदस्य एक दूसरे की देखा-देखी अकेले-अकेले खेल आरम्भ करते हैं।...वह मारा, यह मारा। इधर मारा, अब उधर मारा।...दो तीन पांच। सीकवेंस गुलाम, बेगम, बादशाह।...वह गया। ले, हाथी मात खा गया। अरे बचा ले अपना राजा। यह रही शह और ये मात। इत्यादि स्वरों की खिचड़ी पक रही है। कुछ पल के लिए ये स्वर तीव्र गति धारण करते हैं और धीमे होना शुरू हो जाते हैं। इसी बीच व्याकुलता-सूचक संगीतधुन उभरने लगती है। हताश होकर सभी ऊब से भर जाते हैं। नए स्वर उभरना आरम्भ होते हैं। उफ यह खेल अब बोझ बन गया है। उफ ऊब गया हूं इस तरह खेल-खेल कर! हाए, अब और खेलने को मन नहीं रहा! ओह, क्या करूं? आई एम एग्जास्टिड! व्याकुलता-सूचक संगीत-धुन पूर्ण आवेग में आने के बाद धीमी होकर पृष्ठभूमि में चलती रहती है। सभी असमंजस में पड़े क्षण भर को एक दूसरे की ओर देखते हैं)

पहला : अब क्या करें?

सभी : हम क्या करें?

दूसरा : इस प्रकार अब और नहीं खेला जाएगा!

सभी : हां, और नहीं खेला जाएगा।

(क्षणिक अंतराल पगला हंसी और कहकहों से भवन गुंजा देता है। सभी के प्रश्न इसकी आवाज़ से दब जाते हैं)

पहला : (**संकेत करके ऊंचे स्वर में**) यह पागल है। (**सुनते ही पगला ही ही ही...हंसता हुआ चुप हो जाता है और सभी पहले की ओर ध्यान से देखने लगते हैं**) सुना तुम सबने? यह पागल है पागल!

दूसरा : हां हां, पागल है।

तीसरा : इस पागल को बाहर निकाल दो!

पहला : पागल का यहां क्या काम?

चौथा : एक पागल यहां नहीं रह सकता!

पांचवा : निकाल दो, इसे जल्दी निकाल दो!

सभी : निकाल दो इसे निकाल दो। इसी समय निकाल दो!

पगला : (**व्यंग्यात्मक**) हां! निकाल दो मुझे! मैं पागल हूं! ...हां हां, मैं पागल हूं।...मगर तुम क्या हो? बोलो! तुम क्या हो? उत्तर दो!...चुप क्यों हो?

पहला : अब बोलने लगा है !

चौथा : हां हां ! बोलता है और प्रश्न भी करता है !

पगला : (**पूर्ववत**) हां, बोलता भी हूं ! प्रश्न भी करता हूं ! किन्तु तुम—तुम उत्तर क्यों नहीं दे रहे ? (**शांत होता हुआ ताने देता है**) परन्तु तुम कहोगे क्या ? तुम्हें स्वयं ज्ञात नहीं कि तुम क्या हो ? तुम्हें जीवन से घृणा हो गई है घृणा, समझे ? (**ऊंचे स्वर में**) जीवन से घृणा ! (**अट्टहास**) हा हा हा···ऽऽ··· (**सहसा शान्त गम्भीर**) वास्तव में मैं जानता हूं जीवन के आंचल में तुम एक ऐसा धब्बा हो जिससे तुम नहीं···अपितु जीवन ही तुम से कलंकित होकर ऊब चुका है !

तीसरा : बन्द करो अपनी यह बक-बक !

दूसरा : (**आक्षेपक**) भीजा चाटने लगा है !

पगला : (**तनिक चिल्ला कर**)सत्य की कटुता को सहन करो ! समझो ! यह मेरी बक-बक नहीं—सच्चाई है। ऊब चुका जीवन तुम से ! तुम नहीं ऊबे ? तुम निर्जीव हो चुके हो। तुम्हारी गति मुर्दों की सी बन चुकी है। (**हांफता हुआ**) हां, मुर्दों की सी गति !

(हक्के बक्के से सभी आपस में गुनगुनाने लगते हैं)

मुर्दों की सी गति ?

हमारी मुर्दों की सी गति बन चुकी है ?

सच कह रहा है।

पागल नहीं, फिलासफर है यह।

दार्शनिक है।

नहीं हमें मुंह पर गालियां दे रहा है।

(**ऊंचा स्वर**) अरे समझो, क्या कह रहा है ? यह पागल नहीं है।

(**सर्वोच्च स्वर**) शत प्रतिशत पागल। डाऊटलेसली हंड्रेड परसेंट मैड !

सभी : पागल है यह, पागल है।

पगला : (**संतप्त**) ठीक है। मैं पागल हूं। किन्तु एक बात का उत्तर दे सकोगे क्या ? (**आवेश में**) मेरा यह पागलपन किसकी देन है? किसने मुझे पागल बनाया ?···तुमने···तुम्हीं ने ! हां, तुम सबने ! (**आपस में सभी बड़बड़ाने लगते हैं**) सुनो ! मेरी बात सुनो ! (**बारी-बारी सभी ध्यान देने लगते हैं।**) मैं इस क्लब का बहुत पुराना सदस्य हूं। कम से कम पच्चीस वर्ष पुराना। किन्तु मेरा इतिहास चिर पुरातन है। मेरे इतिहास की आंखों ने इसको··· कई बार बनते और बिगड़ते देखा है।···संदेह न करो। अपनी

आंखों से देखा है। जितनी बार यह क्लब बना मेरे हृदय में एक गुलाब खिला। जितनी बार यह बिगड़ा उतनी बार गुलाब की पत्तियों को धूलि-धूसरित होते देखकर मेरे मन-मस्तक पर वज्रपात हुआ। **(किताबी से)** भैया किताबी, सुन···रेडिएटिंग इश्क में क्या रखा है? रेडिएटिंग पागल को पढ़। कभी इसे भी पढ़कर देख और सोच···सोच कि यह क्यों पागल है? तुम सबका दुख, तुम सब की घुटन, तुम सब की अशान्ति का आखेट मैं हूं। तुम सब आते हो, क्लब बनने की आशा होती है किन्तु···किन्तु उजाड़ कर चले जाते हो! न तुम रह पाते हो, न ही यह क्लब बन पाता है।

पहला : **(आक्षेपक)** तुम अब हद से बढ़ रहे हो।

पगला : नहीं! तुम सब स्वयम् सोचो, मेरा कहना सच नहीं है क्या?

पहला : **(आक्षेपक)** जो जी में आता है बके जा रहे हो?

दूसरा : पागल है साला?

तीसरा : हमें पागल बनाता है। कभी मुर्दा और कभी···उजाड़ू कहता है।

चौथा : इससे पहले कि यह हमें पागल बनाए···इसको ही निकाल दो यहां से।

सभी : निकाल दो इसे। निकाल दो, निकाल दो। **(पगला निरन्तर कह-कहे लगाता है जिनके बीच सभी मिलकर निकाल दो, निकाल दो कहते हुए उसे धक्के मार मारकर निकाल देते हैं। कुछ देर तक पृष्ठभूमि में भी उसके दूर जाते हुए कहकहे सुनाई देते रहते हैं।)**

पहला : मनहूस था।

दूसरा : जब से यहां था, एक ऊब-सी रहती थी।

तीसरा : आज कुछ अधिक ही दौरा पड़ा था साले को।

चौथा : **(सभी से)** अब जो निकाल दिया गया है तो क्या? चलो मज़े से खेल आरम्भ करें।

("चलो भाई चलो। चलो···" कहते हुए सभी अपनी-अपनी मेज़ सम्भालते हैं। वातावरण पूर्ववत है। एक दूसरे की देखा-देखी सभी अकेले-अकेले खेलना शुरू करना चाहते हैं किन्तु कर नहीं पाते।)

पहला : **(थका हुआ)** यों कब तक खेल सकेंगे?

दूसरा : **(ऊबा हुआ)** बार-बार बोरियत को बुलावा भेजने वाली बात है।

तीसरा : और नहीं तो क्या? कुछ देर खेलो और फिर घिसे-पिटे रिकार्ड की तरह बजना शुरू हो जाओ जिस पर डगमगाती हुई सूई कभी इधर, कभी उधर भटकने लगती है और सुर सभी बेसुर हो जाते हैं।

चौथा : तुम ठीक कहते हो लेकिन धैर्य से काम लो। खेल शुरू करो।

(सभी प्रश्नवाचक दृष्टि से एक-दूसरे की ओर देखते हैं और कुछ पल में ही गर्दनें हिला हिलाकर हामी भरते हैं··· 'हां'। खेलना शुरू करते हैं—आप ही गुरु आप ही चेला—'वह मारा! अरे इस तरह से नहीं, इस तरह से। देख उधर मारा। क्वीन हारी; गई। वण्डरफुल।···लंगड़ी, इक्का दुक्की और तीन। तीन अट्ठे। मारा गया। फिर डील करो।···ऐसी तैसी तेरे घोड़े की। अपना फायदा देख किस चाल चलता है। वाह रे मेरे वज़ीर···मार ले बादशाह!···चल प्यारे, अपनी गोट नब्बे तक पहुँच गई। अरे पचानवे पर सांप निगल जाएगा और गिर जाओगे नब्बे से सात पर। अब मेरी चाल देख इत्यादि अनेक स्वरों की खिचड़ी पक रही है। धीमे धीमे उभरते ये स्वर कुछ पल के लिए तीव्र गति धारण करते हैं और पुनः धीमे होने लगते हैं। व्याकुलता की प्रतीक धुन उभरनी आरम्भ होती है। थके हारे हताश होकर सभी ऊब से भर जाते हैं। नये स्वर उभरने लगते हैं:

उफ यह खेल अब बोझ बन गया है।
उफ···ऊब गया हूं इस तरह खेल-खेलकर।
हाए, अब और खेलने को मन नहीं रहा।
ओ-हो, क्या करूं? आई एम एग्ज़ास्टिड।

व्याकुलता की प्रतीक धुन पूर्ण आवेग में उभरती है। धीरे-धीरे प्रकाश मद्धम होना आरंभ होता है। सभी प्रश्नवाचक दृष्टिं से एक-दूसरे की ओर क्षण भर देखते हैं।)

तीसरा: हम क्या करें?

पहला: अब क्या करना चाहिये?

दूसरा: इस तरह अब और नहीं खेला जाता।

कुछ: और नहीं खेला जाता।

सभी: हां, और नहीं खेला जाएगा, हम से।

(प्रकाश पूर्णतया मद्धम हो जाता है जिसमें से केवल छायाएं दिखाई देती हैं। कुछ क्षण पश्चात सबके बीचों बीच इस ओर से उस ओर तक पैंजनियों सहित पदचाप बार-बार सुनाई देने लगती है। थोड़ी ही देर में प्रकाश के तीव्र कंपन द्वारा उत्पन्न तिलसमी प्रभाव तले सभी गुनगुनाने लगते हैं।)

पहला : कौन है ?

दूसरा : अरे सुन रहे हो यह पायल की झंकार ?

तीसरा : हां, सुन रहा हूं । कितनी मीठी ?

पहला : कितनी मधुर है यह पगध्वनि ?

चौथा : यह पैंजनियों का स्वर है किसका ?

तीसरा : कोई छाया प्रतीत होती है !

दूसरा : आखिर है कौन ?

सभी : कौन है यह ?

(पैंजनियों का स्वर उत्तेजक गति धारण कर लेता है। भय से सभी सिहर जाते हैं)

पहला : कौन हो तुम ?

सभी : हां, कौन हो तुम ?

तीसरा : सामने आओ !

दूसरा : हां, सामने आओ !

(एक पल बाद पैंजनियों का स्वर मौन हो जाता है। सभी अवाक से इधर उधर देखते हैं। सामने द्वार के भीतर व्यक्ति-आकार में, फैलते हुए प्रकाश में, दाएं बाएं कन्धों पर केश बिखेरे एक श्वेत वसना चतुर्भुजा जिसके एक हाथ में धान, दूसरे में पुस्तकें तीसरे में त्रिशूल और चौथे में पुष्प हैं—प्रकट होती है। एक पल पश्चात चौंधियाते रंग-बिरंगे प्रकाश की कला के प्रभावोपरांत द्विभुजा के रूप में दिखाई देने लगती है। अपनी-अपनी जगह पर सभी एक साथ इस प्रकार लपकते हैं कि आधी उठी हुई और आधी बैठी हुई स्थिति में स्थिर हो जाते हैं जैसे अकस्मात झपट कर उसे अधिकार में ले लेंगे। प्रतीक संगीत।)

पहला : **(पूर्ववत)** सुन्दर, अति सुन्दर !

दूसरा : **(उठता हुआ)** रोमांचकारी !

तीसरा : **(उठकर मोहवश उसकी ओर झुकते हुए)** लावण्या ! ग्रामवधु !

चौथा : **(उठकर मोहवश उसकी ओर झुकते हुए)** ए ग्रेट···सारी ! आई हेव नो वर्ड टु प्रेज ! **(सीने पर हाथ रखते हुए)** वुड गाऽड आई कुड···।

दूसरा : तुम कौन हो रूपसी ?

तीसरा : यहां···इस समय···कैसे···?

चौथा : **(ठंडी आह भरकर)** शी मस्ट लव मी। ओ' गाऽऽड !

(प्रतीक संगीत मधुर संगीत का रूप धारण करने लगता है। इसके साथ ही समस्त मंच पर इन्द्रधनुषी प्रकाश फैल जाता है।)

भिक्षुणी : (**गूंजती वाणी में**) लगता है तुम सब मुझे प्यार करना चाहते हो?

सभी : हां, मैं तुम्हें प्यार करना चाहता हूं!

चौथा : लेकिन तुम कौन हो? हू आर यू सो मच…

भिक्षुणी : (**गूंजती वाणी में**) मैं हूं भिक्षुणी! जीवन की संचारिणी!

पहला : (**गुनगुनाता है**) भिक्षुणी?

दूसरा : (**गुनगुनाता है**) जीवन की संचारिणी?

(सभी गुनगुनाते हैं…भिक्षुणी! संचारिणी! जीवन की संचारिणी।)

भिक्षुणी : (**गूंजती वाणी में**) तुम सब बहुत दुखी प्रतीत होते हो! अब और घुटन से चूर हुए दीखते हो!

सभी : हां!

दूसरा : लेकिन तुमने कैसे जाना?

भिक्षुणी : भिक्षुणी से कुछ भी गोपनीय नहीं!…मैं सब जानती हूं।…तुम जी नहीं रहे! जीवन के धोखे में मरण भोग रहे हो। अकारण एवं असामयिक मरण!

सभी : (**धक् से**) मरण?

तीसरा : अर्थात मृत्यु?

चौथा : यू मीन लिविंग इन डेथ?

भिक्षुणी : निःसंदेह! तुमने मेरा भाव ठीक ही समझा!…पगला सत्य कहता था—तुम्हारी गति मुर्दों की-सी है।

पहला : अब हमें क्या करना चाहिए? इस स्थिति से हमें घृणा हो चुकी है?

भिक्षुणी : अभी हुआ ही क्या है? और घृणा होनी शेष है!

सभी : (**एकाएक दग्ध से**) दया करो हम पर! दया करो भिक्षुणी!

पहला : तुम ही कोई उपाय कर सकती हो?

सभी : हां, तुम्हीं कर सकती हो!

चौथा : पिटी अस ओ भिक्षुणी! हम पर तरस खाओ!

भिक्षुणी : मैं भिक्षुणी हूं! जीवन की संचारिणी! सृष्टि के जिस अंश के साथ मेरा सम्बन्ध स्थापित रहे उसी में जीवन का वास रहता है। कर्म मेरा मुख्य सिद्धान्त है! कर्मों के अनुसार मेरा सम्पर्क बनता है और आप के कर्म मुझे विवश कर रहे हैं कि आपसे सम्बन्ध

विच्छेद कर लूं।

सभी : नहीं ! ऐसा न करना ! ऐसा न करना, भिक्षुणी !

भिक्षुणी : मेरी कोई मर्यादा भी तो है ?···मैं विवश हो चुकी हूं। इस मन्दिर से सही व्यक्तियों को क्या मिला ? अभी अभी एक सही व्यक्ति को निकाल दिया···भला नहीं किया !

तीसरा : (**जैसे पगले के विषय में अनजान हो**) निकाल दिया ? सही व्यक्ति ?

सभी : हमने ?

भिक्षुणी : निःसंदेह !

चौथा : (**विचलित एव उत्सुक**) कौन है वह ? हू इज़ ही ?

भिक्षुणी : इतना शीघ्र भूल गये ?···वही···जिसे तुम पागल कहते रहे ? (**प्रश्नवाचक द्रवित स्वर में सभी भुनभुनाते हैं—पागल ? पागल ? वही ?**) आप सबमें जीवन का संचार तभी सम्भव है जब आप सही व्यक्ति को उसका प्राप्य प्रदान करें। (**स्तब्ध सभी भिक्षुणी को देखते हैं**) जाओ !···जाओ ! पहले उसे ढूंढो !··· तभी शेष समाधान समझा सकूंगी !···मैं जा रही हूं। (**संगीत की मधुर लहरों के साथ प्रस्थान के पश्चात वही संगीत और जलता बुझता प्रकाश सब की मानसिक स्थिति का प्रतीक बन जाता है। कुछ समय बाद···**)

पहला : समय मत गंवाओ ! चलो, उसे ढूंढें !

दूसरा : (**एक झोंक में**) चलो !···आओ जल्दी !

("चलो चलो, जल्दी—" कहते हुए सभी मंच को खाली कर देते हैं। प्रतीक संगीत लहरियों के साथ यवनिका।)

दृश्य : दूसरा

(समय : चांदनी रात। दृश्य—मरघट के एक कोने में एक वट वृक्ष का अश दिखाई दे रहा है। उसके साथ ही कोई सो रहा है। रात के पक्षी बोल रहे हैं।—कुछ क्षण पश्चात मरघट की पृष्ठभूमि में कुछ व्यक्तियों की बातें सुनाई देने लगती हैं।)

पहला : (**थका थका सा**) लगता है हम बहुत दूर चले आए हैं ?

दूसरा : हां ! लगता है रात काफी बीत चुकी है।

तीसरा : ढूंढते-ढूंढते एक बजा दिया। उसका कहीं पता ही नहीं चल रहा।

दूसरा : पगला ! होगा यहीं कहीं, इधर उधर !

चौथा : (**सहसा**) अरे वह देखो मरघट में ! कोई सो रहा है !

पहला : हां, सो तो रहा है !

तीसरा : चलो, चलकर उसी से पूछें।

दूसरा : हां हां···हो सकता है उसने पगले को कहीं देखा हो।

चौथा : ठीक है ! चलो, चलकर देखते हैं।

(‘चलो चलो आओ’—कहते हुए तीनों मंच पर आ जाते हैं।)

तीसरा : (**मंच से पृष्ठभूमि की ओर संकेत**) आओ भाई ! तुम क्यों रुके हो !

(चौथा भी मंच पर आ जाता है और सब मिलकर सोए व्यक्ति के समीप जाने लगते हैं।)

चौथा : (**खुशी से**) अरे यही है पगला।

दूसरा : (**एकदम**) तो बन गया काम···मिल गया पगला !

सभी : (**इर्दगिर्द जमा होकर**)धन्यवाद भगवान का।

चौथा : थैंक गाड !

तीसरा : (**हक्का बक्का**) यह तो मरा हुआ है।

सभी : मरा हुआ ?

दूसरा : बिना कफन ? उफ !

पहला : अब हमारा क्या होगा ?

तीसरा : हमारा क्या होगा ?

सभी : हां, अब हमारा क्या होगा ?

पहला : यह सब हमारा अपना ही दोष है। पहले हमने उसे पहचाना नहीं।

दूसरा : बेचारा···कह भी रहा था कि सबसे पुराना सदस्य हूं।

चौथा : काश ! भिक्षुणी ने पहले ही यह बात हमें समझा दी होती। वुड गॉड···!

तीसरा : (**घोर निराशा से**) अब क्या हो सकता है।···चलो लौट चलें। (चलो चलना चाहिए—कहते हुए सभी लौटने लगते हैं)

पहला : (**करुण एवं गम्भीर**) ठहरो !

दूसरा : क्यों ? अब क्या होगा ?

पहला : एक काम कर लें !

सभी : कौन सा काम ?

पहला : कम से कम इसे कब्र में डाल दें ।

तीसरा : ठीक है ! **(सहसा)** किन्तु हमें क्या पड़ी है । मैं जा रहा हूं ।

पहला : **(दीन-विनीत)** केवल इन्सान होने के नाते रुक जाओ ! रुक जाओ !

तीसरा : **(व्यंग्यात्मक कहकहा लगाकर)** इन्सान होने के नाते ! कितना बड़ा फतवा होकर रह गया है तुम्हारा यह शब्द—इन···सा···न ! काफी देर मैं भी इस शब्द का दीवाना रहा हूं ! खैर··· **(सब से)** चलो भाई अब कोई फायदा नहीं ! लाइफ इज ए बिजनेस !

(पहले के अतिरिक्त सब का प्रस्थान । एकांत सूचक धुन उभरती है और पृष्ठभूमि में साथ चलती है ।)

पहला : **(गम्भीर स्वर में आलोचना)** तुम्हारा विचार मिथ्या है मित्र ! लाइफ इज नाट बिजनेस बट रेगुलर बिजी-नैस । **(मौन धार कर पगले के शव को पल भर देखने के बाद संवेदनशील स्वर में)** समझ चुका हूं मैं ! पगले···तुम पागल नहीं थे । वास्तव में तुम्हीं थे जो कुछ एक मानव को होना चाहिए ! **(दीर्घश्वास)** सब चले गए ! मैं ही रहा···अकेला मैं ! मेरे जैसा डरपोक व्यक्ति संभव है और कोई नहीं होगा किन्तु इस···सूने मरघट में अकेला होकर भी मैं भयभीत नहीं ? अचरज है ! खैर, मुझे अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहिए ! इस समय कुदाल कहां से मिल सकेगी ? **(शोक संतप्त धुन उभरती है । इसी बीच वह मंच से पल भर के लिए प्रस्थान करता है और फिर कंधे पर कुदाल उठाए प्रवेश करता है । कभी शव की ओर देखता है तथा कभी निर्जन का निरीक्षण करता है । दर्दमिश्रित स्वर में आह्वान करता है)** मुझे क्षमा करना मित्र ! क्षमा करना मुझे ! **(कुदाल से कब्र खोदता है । शव को उसमें रखता है और मिट्टी डालता है)** अंतिम बार नमस्कार हे मित्र ! अंतिम नमस्कार ! **(गर्दन झुकाए तनिक खड़ा रहता है)** मैं जा रहा हूं, मित्र ! मुझे अनुमति दो ! **(प्रस्थान करते समय दायां द्वार स्वतः आवाज करता हुआ बन्द हो जाता है । किंचित भय)** । यह द्वार क्यों बन्द हुआ ? अपने आप ? अंधकारमय वातावरण···घोर सन्नाटा ? **(रात के पक्षियों एवं जीवों के तीव्र**

स्वर) अति भयानक ! दूर-दूर तक मेरी आवाज़ सुनने वाला कोई नहीं मिलेगा ! को···ई नहीं !

पगला : (**ईको में**) निर्भय ! निर्भय मित्र ! यहां तुम्हें कोई भय नहीं !

पहला : (**भयमिश्रित विस्मय**) तुम कौन हो ? कौन हो तुम ?

पगला : (**ईको में**) मैं तुम्हारा मित्र हूं !

पहला : मित्र ? (**चिन्तन**) आवाज़ तो जानी पहचानी लगती है ? (**सम्बोधन**) तुम्हारा नाम क्या है ?

पगला : (**ईको में**) मैं वही हूं जिसे पागल कह कर तुम सबने क्लब से बाहर धकेल दिया था !

पहला : (**हक्का बक्का**) तुम कहां हो ?···मैं···मैं तो पगले के शव को दफना चुका हूं !

पगला : (**ईको में**) हां ! तुम मेरा शव दफना चुके हो। मेरी आत्मा को तो नहीं दफना पाए ?

पहला : (**मनन**) तुम···आत्मा ? (**प्रगट**) तुम सामने क्यों नहीं आ जाते ?

पगला : (**ईको में**) असमर्थ हूं मित्र !

पहला : क्लब को तुम्हारी बहुत आवश्यकता है। तुम्हें ढूंढने सभी यहां आए थे, लेकिन···।

पगला : (**ईको में**) लौट गए ! यही न ? (**व्यंग्यपूर्ण हंसी**)

पहला : हां !

पगला : (**ईको में**) वह समय बीत चुका मित्र ! अब केवल मेरी आवाज़ सुनो !

पहला : (**तनिक मौन के उपरांत**) मुझे तुम्हारी असामयिक मृत्यु का बहुत दुख है।

पगला : (**हलकी हंसी**) मेरी मृत्यु तो बहुत पहले से घट चुकी थी मित्र ! तब से जब मुझे उपेक्षा और तिरस्कार--जिसके मैं योग्य नहीं था···मिली थी। अब तो मुझे मुक्ति मिली है !

पहला : मुक्ति ?

पगला : हां !···मुक्ति जिसके लिये तुम्हारा कृतज्ञ हूं। इस समय तुम मेरी आवाज इसीलिये सुन सके हो क्योंकि मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता था।

पहला : यह जो कुछ मैंने किया···वह मेरा कर्त्तव्य था। कर्त्तव्य पालन के लिए कृतज्ञता कैसी मित्र ?

पगला : जैसा तुम उचित समझो ! किन्तु यहां से जाने से पूर्व एक बात मन में रख लो···सत्य सदा सत्य ही रहता है। सत्य का खण्डन

करने के यत्न भले ही होते रहें। सत्य ही आस्तिक का धर्म है। विश्व के प्रत्येक भूखण्ड पर जिन विभिन्न सत्यों के लिए महान वैज्ञानिकों कोपरनिकस, गैलीलियो इत्यादि ने यातनाएं झेलीं, दार्शनिक सुकरात को विष पीने को मिला, महाराज हरिश्चन्द्र ने कटु परीक्षाएं सहन कीं, गांधी और कैनेडी ने गोलियां खाईं··· अंततः इस समाज ने उन सभी सत्यों को गले लगाया और उन महान पुरुषों के मठ और समाधियां बनाईं, उनके नाम अपनी धर्म ज्ञान की पुस्तकों में स्वर्णाक्षरों में लिखे। (दीर्घ श्वास) और इसे भी याद रखो कि हमारा यह क्लब समाज का प्रतीक है।··· अच्छा अब मैं विदा चाहता हूं। विदा ! शुभ विदा !

पहला : (गंभीर) तुम ठीक कहते हो ! किन्तु इस रहस्य का ज्ञान मुझे आज यहां इस मरघट में आकर ही हुआ। काश, पहले से ही इस तथ्य से अवगत हो चुका होता ! खैर, इस समय तो नियति का अस्तित्व भी प्रबल दीख रहा है।···विदा मेरे मित्र ! विदा··· अनन्त विदा।

बन्द हुआ द्वार स्वर करता हुआ स्वतः खुलता है। प्रस्थान करता हुआ पहला सदस्य खोया-खोया सा मुड़ कर देखता है, "अन···न्···त वि···दा···! मेरे मित्र अन···न्···त वि···दा ! कह कर चला जाता है—यवनिका।)

दृश्य : तीसरा

(समय : रात दो बजे ! दृश्य—एक कमरा जिसमें एक ओर खाली काऊंटर है और कुछ कुर्सियों में पहले सदस्य के अतिरिक्त सब बैठे हुए विचार निमग्न हैं। दो एक कुर्सियां खाली हैं। कुछ क्षण पश्चात् पहले सदस्य का उदासी भरा प्रवेश।)

पहला : मैं आप को इन्डोर गेम्ज़ के कमरे में देखता रहा। आप यहां—इस कमरे में ?

चौथा : वह कमरा बन्द हो चुका है। रात के अढ़ाई बज रहे हैं। इट इज़ टू थरटी !

दूसरा : (पहले से) तुम वहां क्यों रुक गए थे ?

पहला : (शांत) उसका अंतिम संस्कार करने !

दूसरा : (व्यंग्यात्मक हंसी के साथ) तुम महात्मा कब से बन गये ?

पहला : महात्मा ?···मैंने कब कहा कि महात्मा बन गया हूं ?···अंततः यह किसी ने तो करना ही था ! वह कोई भी हो सकता था ! मैंने कर दिया।

तीसरा : ठीक है पर तुम्हें क्या पड़ी थी ?

पहला : (स्वागत) पहले महात्मा ! फिर पड़ी थी ! (तनिक आवेश में) अरे यही स्वार्थ हमें डुबो रहा है। (किताबी से) क्यों किताबी··· तुम भी रोज उपन्यास पढ़ते हो। (समाचार पत्र पाठक से) और तुम अखबारी···तुम भी रोज़ समाचार-पत्र पढ़ते हो ! अपनी सूझ से बताओ इस क्लब के सदस्य हम सब रोज़ यहां आते हैं। हर कोई अपना अपना खेल खेलना पसन्द करता है—खेलता है। ऊब जाता है, घुटन और खीझ से भर जाता है। बता सकते हो क्यों ?

सभी : क्यों ?

पहला : क्योंकि अन्यों को अपना साथी, अपने ही जैसा व्यक्ति समझने में, उसके खेल में साथ देने में—नीचा हो जाने का भाव रखते हैं। (पहले दूसरा सदस्य और फिर सभी व्यंग्यात्मक कहकहे लगाने लगते हैं)। यह व्यंग्यपूर्ण तीखे कहकहे ? लगाओ, और लगाओ ! लेकिन किसलिये ? ताकि समस्त जगत आप की वास्तविकता से परिचित हो सके—इसलिये ?···पगले के शव से, उसकी आत्मा से, मरघट के वातावरण से मुझे जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, काश— आप सब भी···!

चौथा : (अट्टहास) ज्ञान ? शव से ? मरघट से ? मुर्दों की बस्ती से ज्ञान ?

पहला : हां, मैं वास्तविक तथ्य को समझ गया हूं। जीवन का आधार किन बातों पर है, जान गया हूं।

तीसरा : लगता है पगले का विरसा इसके हाथ लगा है।

चौथा : और यह भी पागल हुआ जा रहा है।

दूसरा : निश्चय ही ऐसा लगता है।

पहला : मानवता और आपस के भाई चारे के भाव का अभाव ही मुझे यह पागलपन सौंप रहा है।

तीसरा : (सहानुभूति से) यदि कुशलता चाहते हो तो अपने इस घिसे पिटे उपदेश को भी पगले की कब्र में झोंक दो।

चौथा : (समर्थन) इसने ठीक कहा है। वी आर सिम्पेथेटिक टू योर

लाइफ ! इसकी बात मान लो ।

दूसरा : हम तुम्हें गंवाना नहीं चाहते !

तीसरा : वीं नीड योर एसोसिएशन !

पहला : **(आक्षेपक)** कैसी एसोसिएशन ? कैसा पाना और कैसा गंवाना ? न एक दूसरे से सहानुभूति, न किसी से हाथ बंटाई ! न किसी का दुख न किसी का दर्द । क्या इन्हीं बातों के लिये मानवता को सर्वश्रेष्ठ धर्म माना जाता है ? अपनी अपनी डफली अपना अपना राग ही मनुष्यता का केन्द्रीय भाव है क्या ? मूल मंत्र है क्या ?

तीसरा : **(रौब से)** शायद तुम नहीं मानोगे ?

पहला : **(किताबी से)** तुम्हारा क्या विचार है भाई किताबी ? **(समाचार पत्र-पाठक से)** क्या मैं ठीक नहीं कह रहा रे अखबारी ?

किताबी : तुम्हारी बातें केवल उपन्यासों और कहानियों को रोचक एवं दर्दीला बनाने के लिये रह गई हैं···

पत्र-पाठक : और इनका जीवन की वास्तविकता से कोई संपर्क नहीं रह गया है। ये केवल भाषणों को प्रभावशाली बनाने के मसाले हैं। यही तुम भी कर रहे हो।

पहला : जीवन की वास्तविकता से इनका संपर्क नहीं रहा—या रहने नहीं दिया गया।···यदि ऐसा हुआ है तो क्यों ? क्या इसका कारण···? जब जान चुके हैं कि मिट्टी खाने से पीलिया हुआ है, मिट्टी खाना क्यों नहीं छोड़ देते ?

दूसरा : **(भुनभुनाता)** साला गाली बक रहा है। मिट्टी खिला रहा है।

पहला : हम क्या बच्चे हैं जो मिट्टी छुड़ाने के लिए कोई आएगा और हमारा हाथ थाम लेगा ?···मानवता के रक्षक हमीं हो सकते हैं कोई और नहीं।

दूसरा : **(रोष)** पूरी तरह पागल हो चुका है यह !

सभी : पागल है यह, पागल है।

तीसरा : बहुत समझाया लेकिन मानता ही नहीं।

कुछ : निकाल दो। इसे भी निकाल दो।

चौथा : अभी ! इसी समय निकाल दो। थ्रो हिम आऊट एट वंस ! ही इज़ मैड ! **(सभी भुनभुनाने लगते हैं)**।

पहला : **(चिंतनशील दीर्घ श्वास)** पगला ठीक ही कहता था···

पगला : **(ईको में)** यहां से जाने से पूर्व एक बात मन में रख लो—सत्य सदा सत्य ही रहता है। सत्य का खण्डन करने के यत्न भले ही होते रहें। सत्य ही आस्तिक का धर्म है।

पहला : (स्वगत) हां ! जिन सत्यों के कारण किसी को यातनाएं दी जाती हैं, किसी को फांसी, किसी को विष दिया जाता है, किसी को गोली मारी जाती है—बाद में उन्हीं सत्यों को गले लगा लिया जाता है और उन महापुरुषों की समाधियां और मठ बनाए जाते हैं। धर्म ज्ञान की पुस्तकों में उनके नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे जाते हैं। (करुण। सभी से) समझ नहीं पा रहा कि आपके भाग्य में क्या लिखा है ? लेकिन एक बात क्यों भूलते हैं आप—अपनी वर्तमान स्थिति में जो सुख आप को मिल रहा है वह अल्पकालिक है ? तुम सब···

(एक ओर खड़े किताबी और समाचार पत्र-पाठक हाथों से संकेत करते हुए कुछ विचार विमर्श कर रहे हैं।)

दूसरा : (खीझ) यह हमारा अपमान कर रहा है।

चौथा : गालियां बक रहा है। एब्यूजिंग अस।

तीसरा : (पहले से) सच ही तुम पागल हो चुके हो।

दूसरा : जाओ, अभी चले जाओ यहां से।

सभी : (ऊंचे स्वर में) निकल जाओ यहां से।

चौथा : (गरज कर) पागल कहीं का।

किताबी : ठहरो, यह इस प्रकार नहीं जाएगा। (आगे आता है)

दूसरा : तो फिर कैसे जाएगा ?

पत्र-पाठक : (आगे आकर) पहले इससे एक ब्यान लिखवा लो।

चौथा : ब्यान ? यू मीन एफिडेविट ?

किताबी : कैसा ब्यान ?

पत्र-पाठक : ब्यान यही कि मैं अपनी पूरी सुध-बुध में हूं और सब कुछ अच्छी तरह से सोच समझ सकता हूं। इस क्लब को मैं स्वयं अपनी इच्छा से त्याग रहा हूं।

(सभी भुनभुनाते हैं—"ठीक है, ठीक है···।" दूसरा सदस्य एक कागज और कलम कहीं से लाकर पहले सदस्य के हवाले करता है।)

किताबी : अब लिख दो !

पहला : (करुण) लिखता हूं। (लिखने के लिये कलम कागज पर रखता है)

किताबी : ठहरो !·· यों नहीं लिखा जाएगा (पत्र-पाठक से) अखबारी जो बोलेगा वही लिखना होगा।

पहला : (दुख द्रवित) अखबारी लिखाएगा ? (अखबारी से) तुम

लिखवाओगे रे अखबारी।...लिखाओ। (**भीगी आंखों से सबकी ओर देखता है**)

पत्र-पाठक : लिखो...मैं अपनी पूरी सुध-बुध में हूं। और...(**पहला लिखता है**)

पत्र-पाठक : और सब कुछ अच्छी तरह से सोच समझ सकता हूं। इस क्लब को मैं स्वयं अपनी इच्छा से...

(पहले का लिखते-लिखते हाथ काम्पना शुरू होता है)

पत्र-पाठक : अपनी इच्छा से त्याग कर, छोड़ कर...

(पहले की हाथ के साथ कलाई भी काम्पना शुरू होती है)

पत्र-पाठक : छोड़कर जा रहा हूं। यह मेरा...

(पहले की टांगें भी काम्पने लगी हैं)

पत्र-पाठक : यह मेरा पूर्णतया व्यक्तिगत निर्णय है।

(पहला बड़ी कठिनाई से लिखता है)

पत्र-पाठक : (**मैत्रीपूर्ण स्वर**) बस अब हस्ताक्षर कर दो।

पहला : हस्ताक्षर ?

पत्र-पाठक : हां, हस्ताक्षर !

पहला : (**रुंधा शुष्क स्वर**) एक गिलास पानी ! प्यास !

(एक व्यक्ति तुरन्त पानी का गिलास लेकर आता है)

किताबी : (**उसके हाथ से गिलास लेकर पहले सदस्य को देता है**) यह लो, पानी पियो ! (**पानी पिये जाते समय**) तुम भी क्या याद करोगे कि तुम्हारा मित्र कोई नहीं था। (**पानी पिये जाने के बाद**) अब जल्दी से हस्ताक्षर कर दो।

(पहला कम्पकपी में हस्ताक्षर करने के बाद सम्भलने की चेष्टा करता है)

पत्र-पाठक : अब तुम खुशी खुशी जा सकते हो !

पहला : (**क्षण भर सबकी ओर करुण मुद्रा में देखता है**) खुशी खुशी... हां, खुशी खुशी...! (**द्वार की ओर बढ़ता है। मुड़कर अवाक-सा देखता है**) मैं पागल हो चुका हूं !...मैं पागल हूं। (**रुआंसी हंसी के साथ**) सुनो, सब सुनो, मैं पागल हूं। (**ताना देता है**) कल वह पागल था। उसे निकाल दिया।...आज मैं पागल हूं। मुझ से हस्ताक्षर ले लिये। मुझे निकाल रहे हो।.. लेकिन मेरे बाद भी किसी का नंबर आएगा। (**जाते जाते**) शेष लोगों को सोचना चाहिए...

(दुखद संगीत के साथ प्रस्थान—यवनिका) □

K. P. SABHA AMEPHA
LIBRARY
No
Date
JAMM